स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी

संपादन
डा. मीना गौतम

समूचे हिन्दुतान के साथ व्यवहार करने के लिए हमको भारतीय भाषाओं में एक ऐसी भाषा की जरूरत है जिसे आज ज्यादा से ज्यादा तादाद में लोग जानते और समझते हों और बाकी लोग इसे झट से सीख सकें। इसमें शक नहीं हिंदी ही ऐसी भाषा है।

महात्मा गांधी

राष्ट्रीय अभिलेखागार
अभिलेखीय परंपरा के संरक्षक

स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी

संपादन

डा. (श्रीमती) मीना गौतम

अभिलेख उपनिदेशक

संपादक मंडल

डा. महेश नारायण	राजमणि	मीमांसक
अभिलेख अधिकारी	अभिलेख अधिकारी	सहायक निदेशक (राजभाषा)

राष्ट्रीय अभिलेखागार

जनपथ, नई दिल्ली 110001

प्रस्तावना

मेरे लिए यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि 27 जुलाई 2007 को राष्ट्रीय अभिलेखागार द्वारा आयोजित जिस राष्ट्रीय संगोष्ठी में, मैं पहली बार सार्वजनिक रूप से सम्मिलित हुआ था, उसी संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्रों के प्रकाशन की भूमिका लिखने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है ।

किसी भी देश की पहचान वहां की भाषा व उससे जुड़े साहित्य से होती है तथा इस पहचान के सृजन के पीछे एक लंबी कथा छिपी होती है । भाषाई रूप से भारत एक बेहद समृद्ध राष्ट्र है । यहाँ की भाषाएं अलग-अलग सामाजिक अस्मिताओं के प्रकटीकरण का माध्यम होने के साथ-साथ सांस्कृतिक रूप से भी सभी एक-दूसरे की ताकत हैं।भाषाओं के इस विविधता पूर्ण परिवेश में हिंदी का एक विशिष्ट स्थान है । राष्ट्रीय अभिलेखागार की विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 125 वीं बैठक में यह निर्णय लिया गया था कि हिंदी में मौलिक चिंतन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से **राष्ट्रीय आंदोलन में हिंदी की भूमिका** विषय पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की जाए । यद्यपि हमारे संविधान के निर्माताओं ने 14 सितम्बर 1950 को हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकारा, परन्तु इसका प्रभाव एवं महत्व हमारे राष्ट्रीय आंदोलन में प्रारम्भ से ही परिलक्षित होता है । उत्तर भारत में जहां यह जन-जन की संपर्क भाषा के रूप में लोकप्रिय हुई, वहीं दक्षिण में सी. राजगोपालचारी एवं अन्य हिंदी विद्वानों ने इसे **दक्षिण भारत हिंदी समिति** के कार्य-कलापों के माध्यमों से वहां के लोगों तक पहुंचाया तथा उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रशंसनीय प्रयास किया । तत्कालीन कवियों, लेखकों, पत्रकारों, नाट्यकार यहां तक कि चलचित्रों ने भी हिंदी का भरपूर प्रयोग किया और राष्ट्रीय आंदोलन को सबल बनाने में योगदान दिया ।

जब राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी युग का सूत्रपात हुआ तो हिंदी का प्रचार-प्रसार शनैः- शनैः और बढ़ने लगा । बापू अपनी सभाओं में प्रवचन बहुधा हिंदी में ही दिया करते थे । उनकी यह भी कोशिश थी कि राष्ट्रीय आंदोलन को गति देने वाले जितने भी आंदोलन हों वे हिंदी में भी जाने जाए । इसलिए *सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन* और *भारत छोड़ो आंदोलन* जनता के बीच तादात्म्य स्थापित करने में पूर्ण रूप से सफल रहे । इसके अतिरिक्त स्वाधीनता आंदोलन के जन

नायकों के भाषणों पर भी यदि हम नजर डालें तो पायेंगे कि चाहे उनकी मातृभाषा हिंदी नहीं रही परन्तु वे जनमानस तक हिंदी के माध्यम से ही अपनी बात सरलता से पहुँचाते थे ।

हिंदी के विभिन्न पहलुओं को राष्ट्रीय आंदोलन में उजागर करने के लिए यह परिकल्पना की गई कि संगोष्ठी में **भारत के नवजागरण में हिंदी का योगदान, हिंदी साहित्य और स्वाधीनता संग्राम, महात्मा गांधी और हिंदी, हिंदी पत्रकारिता और स्वाधीनता आंदोलन** तथा **स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी फिल्मों** का योगदान को केन्द्रित कर के शोध- पत्र आमंत्रित किए जाएं । देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं प्रमुख शोध- संस्थाओं से जुड़े विद्वानों से प्राप्त शोध- पत्रों के चयन एवं गुणवत्ता के लिए डा० वाई. पी. आनन्द, भूतपूर्व निदेशक, राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय, नई दिल्ली, की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया तथा उनकी संस्तुति के पश्चात् शोध- पत्रों को विद्वितजनों के समक्ष प्रस्तुत किया गया ।

राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्रों को संपादित करके पुस्तकाकार रूप में लाने के लिए डा. (श्रीमती) मीना गौतम, उप निदेशक ,का कार्य प्रशंसनीय है । इस विभाग में अपने सेवाकाल में श्री मीमांसक, हिंदी अधिकारी ने संगोष्ठी के आयोजन व शोध- पत्रों के सम्पादन में जिस निष्ठा से कार्य किया है, उसके लिये वह धन्यवाद के पात्र हैं । इस प्रकाशन को मूर्तरूप देने में डा. महेश नारायण एवं श्री राजमणि की सक्रिय भूमिका रही है । श्रीमती आशा साहनी, हिंदी अधिकारी व श्री सुशील कुमार, कनिष्ठ अनुवादक ने इस प्रकाशन को सुरुचिपूर्ण रुप से तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । प्रस्तुत प्रकाशन की कंप्यूटर टाइपिंग का कार्य श्री चन्द्र मोहन निगम ने जिस कुशलता से किया है वह उल्लेखनीय है ।

मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत प्रकाशन का हिंदी के साथ-साथ इतिहास के विद्वानों व पाठकों द्वारा समान रूप से स्वागत किया जाएगा ।

लव वर्मा

11 सितम्बर 2008
नई दिल्ली

(लव वर्मा)
अभिलेख महानिदेशक
एवं
संयुक्त सचिव, भारत सरकार

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

1. महात्मा गांधी और हिंदी नवजीवन — 1-10
डा. पुनिता हर्णे

2. हिंदी के विकास में महात्मा गांधी का योगदान — 11-22
डा. मीना गौड़

3. महात्मा गांधी एवं हिंदी — 23-30
सतधारी लाल साहु

4 स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का योगदान — 31-36
डा. अरूण कुमार श्रीवास्तव

5 आजादी की लड़ाई में हिंदी सिनेमा (1930-1947) — 37-43
डॉ चंद्रभुषण गुप्त अंकुर

6 हिंदी पत्रकारिता और स्वाधीनता संग्राम — 44-50
एम. बी. शाह

7 महाकौशल में राष्ट्रीय आंदोलन तथा हिंदी पत्रकारिता (1920 से 1942 तक) — 51-58
डा. राजीव दूबे

8 राजनीतिक चेतना के सूत्रधार — 59-70
पं० माधव राव सप्रे: स्वाधीनता सेनानी साहित्यकार
प्रो. आभा आर॰ पाल

9 बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में इलाहाबाद की साहित्यिक संस्थाएं और उनका राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान 71-78
डा. देवेन्द्र कुमार शर्मा

10 राष्ट्रीय आंदोलन के मध्य छत्तीगढ़ से निकलने वाली समाचार पत्र-पत्रिकाएं 79-87
डा. प्रदीप शुक्ला

महात्मा गांधी और हिंदी नवजीवन

• डा. पुनिता हर्णे

महात्मा गांधी एक बैरिस्टर, दक्षिण अफ्रिका में अल्पसंख्यकों के लिए लड़नेवाले लड़वैये, एक विरल योद्धा, एक नव समाज रचनाकार, अद्भुत वक्ता, विद्वान लेखक, महान् पत्रकार, असाधारण साहस के धनी, सत्याग्रही, आजन्म सत्य की शोध में घूमते एक मुसाफिर और इन सबसे ऊपर एक ऐसे जीवंत प्रकाश थे जिन्होंने बरतानिया सल्तनत की नींव को हिलाकर रख दिया था । महात्मा गांधी बीसवीं सदी के जनसंपर्क और जनसंचार के क्षेत्र में सबसे ऊंचे, श्रेष्ठतम और अनोखे व्यक्तित्व के स्वामी रहे ।

गांधीजी युगपुरूष थे । उनकी विभूति का पूरा आकल्प अभी हुआ ही नहीं है । उनकी सफलता के पीछे उनके देशव्यापी अनुयायियों की अहम् भूमिका रही है । वे सब बापू की सलाह का अनुसरण और उनका प्रसार-प्रचार करते थे जिसकी वजह से बरतानिया सल्तनत, जो हिंदुस्तान में स्थिर हो चुकी थी, उसकी जड़ें टूटने लगीं और सिंहासन डोलने लगा । प्रश्न यह उठता है कि गांधीजी इतना प्रचंड जनमत कैसे बना पाये ? शायद भारतीय संस्पर्श की असरकारक जनसंपर्क प्रणाली का उपयोग करके ही महात्माजी ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंच पाये होंगे । लेकिन उन दिनों के लोगों की रग को पहचानने वाले तमाम विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला था कि, 'गांधीजी की संचार एवं जनसंपर्क की कोई अनोखी या निजी पद्धति है ।'

उन दिनों जब सूचना-संचार के साधन अत्यंत प्राथमिक अवस्था में थे तब गांधीजी ने किस तरह इतने वैविध्यसभर लोगों से उनकी ही भाषा में बिना विक्षेप सीधा ही प्रत्यायन किया, यह आज भी उतना ही बड़ा आश्चर्य है । सूचना एवम् प्रसारण की उन दिनों की प्रणाली का श्रेष्ठतम उपयोग करके महात्मा गांधी ने जो भी काम किया वह एक मिसाल है ।

राष्ट्रभाषा हिंदी-हिंदुस्तानी और 'नवजीवन' (हिंदी)

उत्तर हिंदुस्तान की सर्व सामान्य भाषा हिंदी को राष्ट्रभाषा की उच्च पदवी दिलाने की महात्मा गांधीजी की उत्कट कोशिशों को हम सब भली-भांति जानते हैं । गांधीजी जब भारतदर्शन कर रहे थे तब उन्होंने देखा कि स्वतंत्रता आन्दोलन तो चंद पढ़े-लिखे शहरी बाबुओं और वकीलों के हाथ में है । हिंदुस्तान का हर एक व्यक्ति अगर इस आंदोलन में भाग नहीं ले रहा , अपना योगदान नहीं दे रहा – तो यह आजादी तो मिलने से रही ।

ग्रामीण गरीबों, अल्पशिक्षित या अशिक्षित तक पहुंचने के लिए उन्होंने अपने आपको शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करना सही समझा और मातृभाषा गुजराती में *नवजीवन* साप्ताहिक प्रकाशित करना शुरू किया ।

महात्मा गांधी जी के विचार गुजराती में और अंगेजी में ही प्रगट होते देखकर स्व. श्री जमनालाल बजाज ने गुजराती *नवजीवन* की हिंदी आवृत्ति (संस्करण) निकालने का आग्रह किया । महात्माजी मान गये और उनके अंग्रेजी और गुजराती लेखों का अनुवाद प्रगट होने लगा । जो काम हिंदी *नवजीवन* ने किया, वही आगे जाकर *हरिजनसेवक* द्वारा आखिर तक होता रहा ।

गांधी साहित्य का आस्वाद पाने वाले लोगों की स्वाभाविक इच्छा हुई की गांधीजी की कलम से निकली उनकी ही निजी हिंदी का भी आस्वाद लोगों को मिले । अपने विचार देशवासियों को समझाने की आतुरता के कारण गांधीजी ने गुजराती और अंग्रेजी भाषा पर अच्छा प्रभुत्व पाया था । हिंदी भाषा के बारे में शुरू के दिनों में वे ऐसा न कर सके । लेकिन देशप्रेम और हिंदी भाषा के प्रति अपने विशेष प्रेम के कारण उन्होंने जहां तक हो सका हिंदी बोलने का और पत्र लिखने का नियम चलाया ।

गांधीजी स्वयं जानते थे कि अपने विचार हिंदी जगत के सामने किसी से अनुवाद करवाकर प्रगट करना काफी नहीं है । उन्हें स्वयं कुछ न कुछ हिंदी में लिखना ही चाहिए । इसीलिए पाठकों के और साथियों के आग्रह का अभिनंदन करके वे समय-समय पर कुछ-कुछ हिंदी में लिखने लगे । आखिरकार उन्होंने हिंदी में ही अपना मौलिक लेख लिखना शुरू किया ।

गांधीजी की पत्रकारिता पश्चाद्भूमिका

काकासाहब कालेलकर के अनुसार जब गांधीजी ने अपना जीवन कार्य अफ्रीका में शुरू किया तब दक्षिण अफ्रीका में जाकर बसे हुए भारत के गिरमिटिया मजदूरों के बीच और छोटे –छोटे दुकानदारों के बीच उन्हें अपना काम करना पड़ा । ऐसे लोग समझ सकें, वैसी ही भाषा में उन्हें अपने युगांतरकारी विचार रखने पड़े । लोगों में बातचीत करते समय लोगों की ग्रहण-शक्ति का और भाषा शक्ति का ख्याल गांधीजी को मिल जाता था । गांधीजी ने कभी भी यह नहीं कहा कि ऐसे अनपढ़ लोगों को लेकर मैं क्या करूं ?

दक्षिण अफ्रिका में बसे हुए भारतीय मजदूरों में कई मजदूर तमिल भाषा बोलने वाले मद्रासी थे । उनका सुख-दुःख समझने के लिए गांधीजी ने तमिल भाषा का व्याकरण मंगवाकर सीखना शुरू किया और तमिल लोगों की सेवा भी शुरू की ।

गांधीजी अंग्रेजी में लिखते थे, वह भी बिल्कुल सादा और सीधा । लेकिन उनकी कदर करनेवाले गोरे दक्षिण अफ्रीका में थे । गांधीजी की अंग्रेजी पर बाईबल का असर था और अंग्रेज लोग बाईबल की एंग्लो–सेक्सन अंग्रेजी पर हमेशा आफरीन रहते हैं । डी. स्पिट और रस्कीन की शैली गांधीजी को प्रिय थी । लेकिन वे केवल अपने काम के लिए लिखते थे । शैलीकार होने का न उनका दावा था, न प्रयत्न । आज गांधीजी को अंग्रेजी के लिए भी लोग एक शैलीकार मानते हैं । गांधीजी की अँग्रेज़ी के दोष निकालने वाले माननीय शास्त्री आदि भी गांधीजी की शैली की काफी कदर करते थे ।

हिंदुस्तान आते ही गांधीजी ने अंग्रेजी *यंग इंडिया* और गुजराती *नवजीवन* दो साप्ताहिक शुरू किये । तब से आखिर तक, 33 वर्ष उनकी कलम की धारा चलती रही।

गांधीजी का हिंदी 'नवजीवन'

गांधीजी ने हिंदुस्तान आने के बाद दिनांक 7 सितम्बर 1919 के दिन बतौर तंत्री *नवजीवन* नाम से गुजराती साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया । जैसा कि हम सब जानते हैं इस साप्ताहिक के पूर्व अधिपति श्री इन्दूलाल याज्ञिक थे और वे

नवजीवन का प्रकाशन *नवजीवन और सत्य* नाम से मासिक पत्रिका के रूप में करते थे । गुजराती *नवजीवन* के दो साल बाद गांधीजी ने दिनांक 19 अगस्त 1921 को हिंदी *नवजीवन* का प्रकाशन शुरू किया । अपने प्रथम अंक में ही महात्माजी ने अपना उद्देश्य समझाते हुए लिखा है कि यद्यपि मुझे मालूम है कि *नवजीवन* को हिंदी में प्रकाशित करना कठिन काम है तथापि मित्रों के आग्रहवश होकर और साथियों के उत्साह से *नवजीवन* का हिंदी अनुवाद निकालने की धृष्टता मैं करता हूं । मेरे विचारों पर मेरा प्रेम है । मेरा विश्वास है कि उनके अनुसरण से जनता को लाभ है। इसीलिए उनको हिंदी में प्रगट करने की इच्छा मुझे बहुत समय से थी । परंतु आजतक परमात्मा ने उसे सफल नहीं किया था । हिंदुस्तानी को भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा बनाने का प्रयत्न मैं हमेशा से करता आया हूं । हिंदुस्तानी के सिवा दूसरी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती, इसमें कोई भी शक नहीं । जिस भाषा को करोड़ों हिंदू-मुसलमान बोल सकते हैं, वही अखिल भारतवर्ष की सामान्य भाषा हो सकती है और उसमें जब तक *नवजीवन* न निकाला गया तब तक मुझे दुःख था ।

हिंदुस्तानी-भाषानुरागी *हिंदी नवजीवन* में उत्तम प्रकार की हिंदी की आशा न रखें । *नवजीवन* और *यंगइन्डिया* का अनुवाद ही उसमें देना संभव है । मुझे न तो इतना समय है कि हमेशा हिन्दुस्तानी में लेख आदि लिख कर दे सकूं और न बहुत हिंदुस्तानी लिखने की शक्ति ही मुझमें है ।

'हिंदुस्तानी भाषा का प्रचार' इस साहस का मुख्य हेतु नहीं है 'शांतिमय असहयोग का प्रचार' ही इसका उद्देश्य समझना चाहिए । हिंदुस्तानी भाषा जानने वाला जब तक असहयोग और शांति के सिद्धांत भली-भांति न समझ लेंगे, तब तक शांतिमय असहयोग की सफलता असंभव-सी लगती है । इसलिए *हिंदी नवजीवन* की आवश्यकता थी । परमात्मा से प्रार्थना है कि जो लोग केवल हिंदुस्तानी ही समझते हैं, उन्हें *हिंदी-नवजीवन* मददगार है । (*हिंदी नवजीवन*, 19.8.11)

स्वदेशी आंदोलन गतिशील करने में हिंदी नवजीवन का उपयोग

अपने प्रथम अंक में ही महात्माजी ने मारवाड़ी भाईयों और बहनों के नाम एक पत्र लिखकर उनसे सहकार मांगा था । वह कुछ इस तरह था ।

प्रिय भाई-बहनों,

आपके प्रेमवश होकर मैंने *हिंदी नवजीवन* निकालने का साहस किया है । जबसे मैं भारतवर्ष में आया हूं, तब से मेरा संबंध आपसे निकट होता जा रहा है । आपने मेरी प्रवृत्ति को प्रेमभाव से देखा है और मुझे सहायता दी है । आपने हिंदी प्रचार में भी खूब मदद की है । आपकी ही सहायता से हिंदी का प्रचार आज द्रविड प्रांतो में अच्छी तरह हो रहा है । आप भाई और बहनें सहयोगी हैं । आप राष्ट्रीय जीवन में रस लेते हैं । आपने देख लिया है कि, धनी पुरूष और स्त्रियां राष्ट्रीय जीवन से बहिर्मुख नहीं रह सकती । अखिल भारत की राष्ट्रीय समिति ने स्वराज्य प्राप्ति के लिए अब जो कदम उठाया है, उसमें आप लोगों की ओर से सहायता मिलने पर ही संपूर्ण सफलता मिल सकती है । उक्त समिति ने निश्चय कर लिया है कि आगामी 30 सितम्बर तक परदेस कपड़ों का पूरा बहिष्कार कर दिया जाए । मैंने आप ही के विश्वास पर सितम्बर मास की अवधि रखने की सलाह दी । अतएव इस स्वदेशी आंदोलन को प्रबल बनाने के समय में *हिंदी-नवजीवन* का प्रकाशित होना उचित ही है।

मोहनदास करमचंद गांधी

बापू के इस पत्र से ज्ञात होता है कि वे अपने आयोजन व हेतुओं के समयानुसार पालन में इतने चुस्त थे कि उन्होंने *हिंदी नवजीवन* के प्रकाशन समय का चयन भी तब किया जब वे स्वदेशी आंदोलन को देशव्यापी बनाना चाहते थे ।

राष्ट्रभाषा हिंदी-हिंदुस्तानी और बापू के विचार

हिंदुस्तानी कैसी भाषा है ? यह बात बापू ने कई बार अपने लेखों में व वक्तव्यों में समझाने का प्रमाणिक प्रयत्न किया है । 7 सितम्बर 1929 के *हिंदी नवजीवन* में अपने लेख 'राष्ट्रभाषा' में उन्होंने लिखा है "जो मानपत्र मुझे संयुक्त प्रान्त से मिले हैं, उनमें से मुझे बहुतकुछ जानने को मिलता है । इस लेख में मैं उन पर भाषा की दृष्टि से ही विचार करना चाहता हूं ।" महात्माजी ने तीन नमूने वहां (नवजीवन में) छाप दिये थे जिनमें उनके अनुसार तीनों में भाषा की दृष्टि से वैविध्य है । वे कहते हैं, ये तीनों नमूने हिंदी, हिंदुस्तानी यानी राष्ट्रभाषा के हैं । एक केवल अरबी फारसी शब्दों से भरा पड़ा है, जिसे सामान्य हिंदू नहीं समझ सकेगा । दूसरा

केवल संस्कृत शब्दों से भरा हुआ है जिसे सामान्य मुसलमान कभी नहीं समझ सकता। तीसरा ऐसा है, जिसे सामान्य हिंदू या मुसलमान दोनों समझ सकते हैं । इसमें जान-बूझकर संस्कृत या अरबी-फारसी शब्दों का त्याग या चुनाव नहीं पाया जाता । यदि हम हिंदी को राष्ट्रभाषा मनवाना चाहते हैं, यदि हिंदू-मुसलमान, दोनों ऐक्य सिद्ध करना चाहते हैं, तो हम संस्कृत या अरबी-फारसी शब्दों का बहिष्कार नहीं कर सकते अर्थात् भाषा लिखने या बोलते समय हमारे मन में एक-दूसरे का या एक-दूसरे की बोली का द्वेष नहीं होना चाहिए , बल्कि एक-दूसरे के लिए प्रेम अथवा मुहब्बत होनी चाहिए । मुसलमान जब किसी हिंदू को अरबी-फारसी शब्दों का इस्तेमाल करते देखता है तो उसे खुशी हासिल होती है । इसी तरह उस मुसलमान के प्रति हिंदू का आदर बढ़ता है, जो मौके से संस्कृत शब्दों का उचित उपयोग कर लेता है ।"

जैसा कि हम सब जानते हैं, पत्रकार का दायित्व निभाते हुए महात्माजी ने निर्भयता, सत्य और औचित्य का सदा पालन किया । जो बातें उन्हें लिखनी होती, उन्हें वे बेधड़क और स्पष्ट लिख जाते थे । उनकी इसी निर्भीकता के कारण वे एक बार जनरल स्मट्स से उलझ पड़े थे । गांधीजी ने उनके साथ हुई बातें *इन्डियन ओपीनियन* में छाप दी थी स्मट्स बिगड़े । जब गांधीजी ने उन्हें समझाया कि उन्होंने जो लिखा वह अक्षरशः सत्य है और ऐसा उन्होंने सदाशयपूर्वक अपने दायित्व का निर्वाह करने के हेतु किया है और इससे किसी भी तरह औचित्य भंग नहीं होता, तब कहीं जाकर स्मट्स संतुष्ट एवंम् आश्वस्त हुए थे ।

सत्यप्रियता और पारदर्शिता के गांधीजी के विचार और आचार समान होने की वजह से उन्होंने पत्रकारिता के व्यवसाय को एक ओजस्वी रूप दिया । इस बात की पुष्टि करते एक लेख का सारांश कुछ इस प्रकार है । गांधीजी को किसी परित्यक्ता ने *'अभागिनी पुत्री'* नाम से पत्र लिखा । गांधी जी ने उसे अपने हिंदी *नवजीवन* (4 जुलाई 1926) में छाप दिया । लेखिका के प्रति सहज सहानुभूति प्रगट करते हुए आर्शीवाद भी दे दिया । बाद में उसके पति ने उन्हें पत्र लिखा, जिससे सारी हकीकत प्रगट हुई । गांधीजी ने दूसरा पत्र भी साप्ताहिक में छापा और लिखा कि लेखिका या तो अपनी निर्दोषता सिद्ध करे या असत्य लिखा हो तो पश्चाताप करे और भविष्य में सत्याचरण की शपथ ले ।

प्रसिद्ध हिंदी भाषी सास्वत डा. अम्बाशंकर नागर के शब्दों में गांधीदर्शन का सार यह है "लोगों के मन में महात्मा गांधी के प्रति विश्वास था । वे जानते थे कि बापू छापेंगे या जो भी लिखेंगे, वह सत्य होगा। उनका कोई समाचार या आदेश असत्य नहीं हो सकता । वे जनता को भी वही सलाह देंगे जो उनके लिए हितकर होगी । यह आस्था, विश्वास ही स्वतंत्रता संग्राम की सफलता का आधार था । इस महान् अनुष्ठान में बापू की हिंदी पत्रकारिता का योग निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है । उन्होंने इसके द्वारा जनता को जगाया, उसकी शंकाओं का समाधान किया, उसमें नैतिक हिम्मत पैदा की और जूझने के लिए उनमें आत्मविश्वास पैदा किया । पत्रकारिता के माध्यम से इससे भी बड़ा काम जो बापू ने किया वह था देश को एकता की डोर में बंधने का ।"

जैसा कि हम जानते हैं, महात्माजी व्यवसायी लेखक नहीं थे जो विषय सोचते रहते हैं । महात्माजी ने समय-समय पर अपनी निजी हिंदी में जो लेख लिखे, वे आवश्यकता या प्रेरणावश होकर लिखे ।

पर्दाप्रथा, बालविवाह, मद्यनिषेध, ऊंच-नीच जैसे सामाजिक विषयों पर उन्होंने जब भी लिखा तो इतना आत्मीय बनकर लिखा कि पाठक उनके साथ जुड़े तो हमेशा के लिए जुड़ते चले गये ।

महात्माजी की कलम से निकले उनके हिंदी (निजी) लेख *बापू की कलम से* नामक पुस्तक में काकासाहब ने संचित किया है । इंदौर के श्री पन्नालाल जैन की मेहनत के परिणामस्वरूप हमें यह ग्रंथ प्राप्त है । इस ग्रंथ के विषय का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत है :

अपनी निजी हिंदी में लिखे गये कुल 630 हिंदी लेखों में से महात्मा गांधीजी ने सबसे ज्यादा लेख हिंदी (हिंदुस्तानी) के बारे में लिखे हैं । जिनकी संख्या 24 है । हालांकि, राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी के प्रचार-प्रसार में गांधीजी ने अपने लेखों के माध्यम से जो योगदान दिया, उनमें से ज्यादातर उन्होंने गुजराती भाषा में लिखे थे । जिनका अनुवाद श्री काशीनाथ त्रिवेदीजी ने किया है । जिसकी संख्या 60 से भी अधिक है ।

अतः यह सिद्ध होता है कि, महात्मा गांधीजी का *हिंदी नवजीवन* के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाने का और खासकर हिंदी भाषाभाषी लोगों तक सीधे पहुंचाने का जो ध्येय था वह सिद्ध हुआ है और हिंदी –हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा के रूप में सर्वस्वीकृति प्राप्त हो यही इच्छा भी मूर्तिमत होती दिखाई देती है ।

दूसरे नम्बर पर अहिंसा विषय पर लिखे उनके 19 लेखों का स्थान है। समग्र हिंदुस्तान की प्रजा को स्वतंत्रता आंदोलन के लिए 'अहिंसक मार्ग स्वातंत्रय के लिए अपने आपको तैयार करें यह जरूरी है,' यह प्रण अपने सामने रखते हुए महात्माजी ने हिंदी सामयिक के माध्यम से सबसे ज्यादा लोगों तक पहुंचने का जो ध्येय रखा था, वह भी सिद्ध होता दिखाई देता है ।

हरिजन पर 15, खादी पर 14, स्वराज्य पर 13 और रामनाम विषय पर उनके 12 मौलिक हिंदी लेख *हिंदी नवजीवन* में छपे हैं । 'सवाल-जवाब' और 'पत्र-पिटारा' विभागों में गांधीजी ने सबसे ज्यादा लिखा है । इस विशिष्ट श्रेणी में महात्माजी ने अनेक विषयों पर लिखा है । जैसे कि, अप्राकृतिक व्याभिचार के बारे में, उर्दू, नागरी, हरिजन, खाकसार आंदोलन, जीवदया, त्रिविध बहिष्कार, धर्मशास्त्र, नकली खादी, रामायण, विधवा विवाह, वृक्षपूजा, कन्यावध, उपवास, पूर्णाहुति का संदेश, जनता से आशा, जमींदारों से सलाह, दानियों से विनती, पाठकों से अपील, सरकार की व्याख्या, चाय की हानि के बारे में, गृहस्थ के बारे में, विद्यार्थियों के बारे में आदि । *गांधीजी के विचार* नामक इस श्रेणी में गांधीजी ने पत्रों के माध्यम से पूछे गये सवालों के जवाब में 143 लेख/जवाब लिखे हैं ।

गांधीजी के ही शब्दों में इन सवाल-जवाब का महत्व देखें तो, "अख़बार के माध्यम से मुझे मनुष्य का रंगबिरंगी स्वभाव जानने को मिला। संपादक और ग्राहक के बीच निकट का और स्वच्छ संबंध स्थापित होने की धारणा होने से मेरे पास हृदय खोलकर रख देनेवाले पत्रों का ढ़ेर लग जाता था । उसमें तीखे, कड़वे, मीठे व भांति-भांति के पत्र मेरे नाम आते थे । उन्हें पढ़ना, उन पर विचार करना, उनमें से विचारों का सार ग्रहण करके उत्तर देना –यह सब मेरे लिए शिक्षा का उत्तम साधन बन गया था । मैं संपादक के दायित्व को समझने लगा और मुझे समाज के लोगों पर जो प्रभुत्व प्राप्त हुआ, उसके कारण भविष्य में होनेवाली लड़ाई संभव हो सकी, वह सुशोभित हुई और उसे शक्ति प्राप्त हुई ।"

अनुभूति

महात्मा गांधी के हिंदी लेखों और उनकी निजी हिंदी के अध्ययन से जो आध्यात्मिक चेतना उजागर हुई वह कैसी थी इस बात को लेखिका ने स्वयं जाना है । यह बात सभी गांधीप्रेमी भी जानते हैं ।

जीवनशुद्धि के आदर्श को अपने वृत्तविवेचन और भाषाशुद्धि में उतारनेवाले महात्मा गांधी ने न्यायनिष्ठा और सत्यनिष्ठा से पत्रकारिता की और उसे एक पवित्र दर्जा दिलाया ।

इंडियन सोशल रिफार्मर के संपादक श्री नटराज ने महात्मा गांधी के बारे में कहा था, "Everybody's honour is safe in his hands" हर आदमी की आबरू गांधी जी के पास सुरक्षित थी ।

शायद यही वजह थी,या है कि हम सब आज भी गांधीमय हैं ।

संदर्भ सूची

1 **राष्ट्रभाषा हिंदी और गांधीजी**, डा. अंबाशंकर नागर, निदेशक, भारतीय भाषा संस्कृति संस्थान, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

2 **बापू की कलम से**, संपा0, काकासाहेब कालेलकर, प्रथम आवृत्ति, नवजीवन प्रकाशन, आश्रम मार्ग, अहमदाबाद – 380014, 1957

3 **गांधीजीनुं साहित्य, रमण मोदी,** प्रथम आवृत्ति , नवजीवन प्रकाशन आश्रम मार्ग, अहमदाबाद 390014

4 **राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी, महात्मा गांधी**, अनु. काशीनाथ त्रिवेदी

5 **कालेलकर ग्रंथावली ग्रंथ-3**, काकासाहेब कालेलकर

लेख

1. **गांधीजी एक पत्रकार,** जितेन्द्र देसाई मूल अंग्रेजी (अप्रकाशित) वाईस चान्सलर, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

2. **गांधी युगीन साहित्यिक पत्रकारिता,** प्रो. मालती दुबे (अप्रकाशित) अध्यक्षा, हिंदी विभाग, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

हिंदी के विकास में महात्मा गांधी का योगदान

• डा. मीना गौड़

आदि काल से देश के लोगों को एकसूत्र में बांधने के लिए एक भाषा की आवश्यकता रही है । प्रत्येक देश की सर्वाधिक समृद्ध भाषा को राष्ट्रभाषा का गौरवपूर्ण पद प्रदान किया जाता है। उसे राष्ट्र की एकता का प्रतीक माना जाता है । प्राचीनकाल में संस्कृत और मध्यकाल में प्रशासनिक भाषा फारसी थी, लेकिन जनसामान्य की भाषा हिंदी रही है । "तीर्थयात्रियों द्वारा सदियों से भारत के प्रत्येक कोने में हिंदी का प्रयोग अहिंदी भाषा-भाषियों द्वारा किया जाता था । दक्षिण के आचार्यों ने आदिकाल से ही अनुभव किया था कि इस भाषा के माध्यम से वे सारे देश के जन-जन तक अपना संदेश पहुंचा सकते हैं । वल्लभाचार्य, विट्ठल, रामानुज, रामानन्द इसकी राष्ट्रीय महत्ता को समझकर इसे अपने व्यवहार में लाते रहे ।" [1]

अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षा एवं शासन कार्य चलाए जाने के कारण देश के समक्ष राष्ट्रभाषा का प्रश्न दुविधापूर्ण बन गया, क्योंकि राजकीय भाषा होने के साथ-साथ यह भारत के प्रबुद्ध वर्ग के मध्य विचार आदान-प्रदान का माध्यम बन गया था ।

राष्ट्रीय भावना के विकास जागृति के साथ राष्ट्रभाषा की पुकार भी उठी । कांग्रेस इस जागृति को संगठित रूप देने लगी और देश के सब राष्ट्रवादी देशभक्त इसके झण्डे के नीचे आकर देशहित की चिन्ता करने लगे । अंग्रेजी राज्य के विरोध के साथ अंग्रेजी भाषा का विरोध भी बढ़ता गया । हिंदी राष्ट्रभाषा सम्मेलन आयोजित किये जाने लगे । हिंदी नाना भाषा-भाषियों के बीच संयोग सूत्र बन गयी । हिंदी के माध्यम से ही जनता में राष्ट्रीय स्वाधीनता की आकांक्षा फैली ।

सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी गांधीजी की उपलब्धियां राजनीति एवं समाज सुधार के क्षेत्र में इतनी ज्यादा महत्वपूर्ण रहीं कि शिक्षा तथा विशेषकर राष्ट्रभाषा हिंदी

---

[1] गुप्ता दीनदयाल, प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्रांसलेशन ऑफ द ऑल इंडिया ऑरियेन्टल कान्फ्रेन्स सेशन, दिल्ली, दिसम्बर, 1957, भाग – 1, दिल्ली , 1959, पृ. 227

विकास के संबंध में उनके योगदान को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया ।[2] हिंदी से उनका तात्पर्य हिंदुस्तानी से था जो हिंदी-उर्दू की मिश्रित भाषा थी । हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद दिलाये जाने के संबंध में गांधीजी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही । भारत आते ही उन्होंने जिन आंदोलनों का नेतृत्व किया उनमें हिंदी आंदोलन प्रमुख ही नहीं बल्कि शीर्ष पर रहा । गांधीजी ने हिंदी को भारतीय स्वतंत्रता की वाणी की संज्ञा दी ।

भारतीय भाषाओं में विशेषकर हिंदी के प्रति उनका लगाव दक्षिण अफ्रीका के प्रवास काल के दौरान ही स्पष्ट रूप ले चुका था । दक्षिण अफ्रीका के एक समाचार पत्र में उन्होंने कहा था "यह भाषा उत्तर भारत के सभी लोग बोलते हैं । इसकी माता संस्कृत और फारसी होने के कारण वह हिंदू और मुसलमान दोनों को अनुकूल पड़ सकती है । इसके सिवा चूंकि फकीर और सन्यासी भी यही भाषा बोलते हैं, अतः इसका प्रसार सभी जगह होता है । अनेक अंग्रेज भी सीखते हैं । इस भाषा का फैलाव बहुत है यह भाषा अपने-आप में बहुत मीठी, नम्र और ओजस्वी है । हर एक पाठशाला में स्वभाषा के अतिरिक्त इस भाषा का शिक्षण दिया जाना चाहिए" ।[3] गांधीजी का यह भी मानना था कि जो हिंदुस्तानी माता-पिता अपने बच्चों को अंग्रेजी में बोलने और सोचने की बचपन से ही शिक्षा देते हैं, वे एक प्रकार से अपने देश के साथ धोखा कर रहे हैं । वे लोग ऐसा करके अपने बच्चों को आध्यात्मिक एवं सामाजिक विरासत से वंचित कर उन्हें देश सेवा के लिए असमर्थ एवं अनुपयुक्त बनाते हैं । इसी कारण गांधीजी ने अपने बच्चों के साथ हमेशा गुजराती में ही वार्तालाप करना उचित समझा । [4]

दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर गांधीजी ने पाया कि हिंदी के विरोध में अंग्रेजी सरकार, कांग्रेस के अधिकांश नेता तथा अंग्रेजी राज चलाने वाली नौकरशाही

---

[2] पटेल एस एस, द एजुकेशन फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद, 1955, प्रस्तावना, पृ0 ix

[3] इंडियन ओपीनियन, फिनिक्स, 1906

[4] गांधी एम. के. – सत्य के प्रयोग, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1937, पृ0 171

खड़ी थी । गांधीजी ने इन तीनों से मोर्चा लिया । गांधीजी ने दक्षिण के चार प्रांतों आंध्र, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक को हिंदी के अनुकूल बनाया । बाद में बाकी के प्रान्त असम, बंगाल, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात और सिंध में हिंदी का प्रचार चलाकर यहां के लोगों को हिंदी के अनुकूल बनाया । उन्होंने अनेक प्रभावशाली नेताओं को हिंदी के पक्ष में किया जो आसान काम नहीं था । [5]

गांधीजी का विचार था "विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने से दिमाग पर असह्य बोझ पड़ता है । यह बोझ हमारे बच्चे उठा तो सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ती है । वे दूसरा बोझ उठाने लायक नहीं रह जाते हैं । इससे हमारे अधिकांश स्नातक निकम्मे, कमजोर निरूत्साही तथा नकलची बन जाते हैं, उनमें वीरता, निर्भयता, और अन्य गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं । इससे हम नयी योजनायें नहीं बना सकते और यदि बनाते है तो उन्हें पूरा नहीं कर पाते । कुछ लोग जिनमें उपयुक्त गुण दिखाई देते हैं, वे अकाल ही काल के गाल में चले जाते हैं। हम वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु और प्रफुल्ल चन्द्र राय जैसे देशभक्त को देखकर मोहान्ध हो जाते हैं । मुझे विश्वास है कि हमने 5 वर्ष तक मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा पाई होती तो इसमें इतने बसु और राय होते कि उन्हें देखकर हमें अचम्भा होता । यदि हम यह विचार एक तरफ रख दें कि जापान का उत्साह जिस ओर जा रहा है, वह ठीक है या नहीं, तो हमें जापान का साहस आश्चर्यजनक मालूम होगा । उन्होंने मातृभाषा द्वारा जन जागृति की है । इसलिए उनके हर कार्य में नयापन दिखायी देता है, वे शिक्षकों के भी शिक्षक बन गए है" ।[6]

हिंदी के पक्षपाती होते हुए भी गांधीजी अंग्रेजी साहित्य का भी आदर करते थे । वे उसे विश्व के श्रेष्ठ ज्ञान एवं दर्शन से परिपूर्ण मानते थे किन्तु वह उसके अध्ययन को केवल उन छात्रों के लिए उपयोगी मानते थे जो साहित्यिक प्रतिभा के धनी थे । वे ऐसे छात्रों द्वारा अंग्रेजी साहित्य के समृद्ध ज्ञान को हिंदी एवं प्रान्तीय भाषाओं में अनुवादित करना चाहते थे ताकि भारतीय को भी उस श्रेष्ठ ज्ञान का लाभ प्राप्त हो सके । अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य के लिए भी वे अंग्रेजी की महत्ता विश्व-भाषा के रूप में

---

[5] काका कालेलकर – गांधी हिंद दर्शन, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ0 300

[6] महात्मा गांधी का अध्यक्षीय भाषण, द्वितीय गुजरात भड़ूच प्रांतीय शिक्षा सम्मेलन, 20 अक्तूबर, 1971

स्वीकार करते थे ।[7] देशी भाषा के अतिरिक्त उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वह हिंदी, संस्कृत, फारसी और अरबी इन सभी को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करना चाहते थे ।

गांधीजी का विचार था कि किसी बालक का सर्वांगीण विकास उसकी मातृभाषा द्वारा शिक्षा दिये जाने पर ही संभव हो सकता है । दूसरी भाषा द्वारा शिक्षा प्रदान किये जाने पर उसकी क्षमता उभर नहीं पाती ।[8] गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में अंग्रेजी माध्यम द्वारा अध्ययन में होने वाली परेशानियों का वर्णन करते हुए लिखा है "कक्षा चौथी से जब उनकी शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो गया तो उन्हें काफी कठिनाई का अनुभव होने लगा । [9]

गांधीजी का मानना था कि मां के दूध के साथ जो संस्कार और मीठे शब्द मिलते हैं; उनके और पाठशाला के मध्य जो मेल होना चाहिए, वह विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने से टूट जाता है । इस संबंध को तोड़ने वालों का हेतु भले ही पवित्र क्यों न हो फिर भी वे जनता के दुश्मन हैं । हम ऐसी शिक्षा के वशीभूत होकर मातृद्रोह करते हैं । इसके अतिरिक्त विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा देने से शिक्षित तथा सामान्य जनता के बीच की दूरी बढ़ जाती है । यही स्थिति अधिक समय तक कायम रही तो एक दिन लार्ड कर्जन का आरोप सही हो जायेगा कि शिक्षित वर्ग जनसाधारण का प्रतिनिधि नहीं है ।" [10] 1908 ई0 में गांधीजी ने पहली बार अपने इस मत की औपचारिक अभिव्यक्ति की "भारत की जनता को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देना उन्हें अंग्रेजी अधीनता में लाना था । मैकॉले द्वारा डाली गयी भारतीय शिक्षा की नींव ने भारतीयों को पराधीन बना दिया । मैं यह नहीं कहता हूं कि उनका इरादा यही था, परन्तु परिणाम यही रहा ।[11] उनका विचार था कि "हिंदी ही हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय की भाषा हो सकती है,यह बात निर्विवाद सत्य है । यह कैसे हो, केवल इसी

[7] वही

[8] नॉटसन जी. ए., स्पीचेज एण्ड राईटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, 20.2.1918, पृ0 426-28

[9] गांधी एम. के., सत्य के प्रयोग, पृ0 14-15

[10] महात्मा गांधी, हिंद स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1949, पृ0 76

[11] वही, पृ0 71-77

पर विचार करना है ।[12] हिंदी शिक्षित वर्गों के बीच समय माध्यम ही नहीं बल्कि जनसाधारण के ह्दय तक पहुंचने का द्वार बन सकती है । इस दिशा में देश की कोई भाषा इसकी समानता नहीं कर सकती और अंग्रेजी तो कदापि नहीं कर सकती" [13] उनका मानना था कि "अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा में कम से कम सोलह वर्ष लगते है । यदि इन्हीं विषयों की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दे दी जाय, तो ज्यादा से ज्यादा 10 वर्ष लगेंगे । यह राय बहुत से अनुभवी शिक्षकों ने प्रकट की है । हजारों विद्यार्थियों के 6-6 वर्ष बचने का अर्थ यह होता है कि कई हजार वर्ष जनता को मिल गये ।" [14]

गांधीजी राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए एक भाषा में निम्नलिखित लक्षणों का होना अनिवार्य मानते थे ,

1 वह भाषा राजकर्मचारियों के लिए सरल हो ।

2 उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष के परस्पर धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवहार निभ सकें ।

3 उस भाषा को देश के अधिकांश निवासी बोलते हों ।

4 वह भाषा राष्ट्र के लिए सरल हो ।

5 वह भाषा क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति के ऊपर निर्भर न हो ।

---

[12] प्रताप, 28.5.1917

[13] वही, दिनांक 3.7.1917

[14] नॉटसन जी.ए., स्पीचेज एण्ड राईटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी 20-2-1918 पृ0 426-28

उनका यह मानना था कि उपर्युक्त लक्षणों से युक्त हिंदी भाषा की समता करने वाली भारत में अन्य कोई भाषा नहीं है । अंग्रेजी भाषा उपर्युक्त मापदंडों में से एक को भी पूर्ण नहीं कर पाती है ।[15] जबकि हिंदी एक अत्यंत सरल भाषा है दक्षिण भारत की चार भाषाओं सहित हिंदुस्तान के हिंदू, जो भाषाएं बोलते हैं, उन सबमें संस्कृत के बहुत से शब्द हैं । अतः इन सभी भाषाओं में बहुत समानता है । हमारा इतिहास कहता है कि पुराने जमाने में उत्तर दक्षिण के बीच का व्यवहार संस्कृत द्वारा चलता था । [16]

गांधीजी हिंदीतर भाषियों को अपना उदाहरण देकर समझाते थे कि हिंदी बोलने में होने वाली गलतियों से डरना नहीं चाहिए: भूलें करते-करते भूलों को सुधारने का अभ्यास हो जाएगा । [17]

अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन लखनऊ में उन्होंने कहा कि राष्ट्रभाषा के प्रचार के लिए हमें भागीरथ प्रयत्न करना होगा । सरकार को हमें अंग्रेजी के बजाय हिंदी भाषा में प्रार्थना पत्र लिखकर भेजना चाहिए । हमें अपनी भाषा में बोलना और लिखना चाहिए । जिनको गरज होगी वो हमारी बात सुनेंगे ।" [18]

राष्ट्रभाषा के लिए गांधीजी हिंदी या ऊर्दू शब्द की अपेक्षा हिंदुस्तानी शब्द का प्रयोग ज्यादा उचित समझते थे । उनकी धारणा थी कि हिंदी-उर्दू मिश्रित हिंदुस्तानी, जो दोनों के बीच की भाषा है उसे भारत की राष्ट्रभाषा बनायी जानी चाहिए । देवनागरी में लिखी जाने पर हिंदी तथा फारसी लिपि में लिखी जाने पर वह उर्दू कही जाती है ।[19] हिंदुस्तानी जो दोनों हिंदी-उर्दू के बीच की भाषा है उसे आम भाषा, कुल

---

[15] उपर्युक्त 4-2-1916 पृ० 318-20

[16] उपर्युक्त 20-10-1917 पृ० 395-99

[17] उपर्युक्त

[18] गुजराती नवजीवन, 1-6-1924

[19] महात्मा गांधी, भड़ुच प्रान्तीय शिक्षा सम्मेलन, 20-10-1917

हिन्द की भाषा मान ली जाए" ।[20] वे चाहते थे कि हर भारतीय अरबी लिपि को भी सीखे तथा हिंदी और उर्दू दोनों का प्रचार हिंदू मुस्लिम एकता के प्रचार में किया जाये। मुगलकाल में भी हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा रही है और मुगल सम्राटों ने अरबी या फारसी को उसके स्थान पर थोपने को कोशिश नहीं की । उनका मानना था कि 'हिंदुस्तानी' भाषा राष्ट्रभाषा बन चुकी है । हमने सदियों पहले उसका राष्ट्रभाषा के रूप में उपयोग किया है । गांधीजी सम्पूर्ण भारत के लिए एक लिपि 'देवनागरी' अपनाए जाने के पक्षधर थे । उनका विचार था कि "राष्ट्रीय भाषा ऐसे शब्दों एवं मुहावरों से पूर्ण होना चाहिए जिसे अधिकांश जनता समझ सके ।[21] अर्थात् हिंदी भाषा जटिल नहीं बने। इस प्रकार स्पष्ट है कि गांधीजी ने बार-बार मिली जुली भाषा हिंदुस्तानी का ही समर्थन किया । उन्होंने कई बार हिंदी को परिभाषित करने का प्रयत्न किया उनके अनुसार" हिंदी उस भाषा का नाम है, जिसे हिंदू और मुसलमान कुदरती तौर पर बगैर प्रयत्न के बोलते हैं । 'हिंदुस्तानी' और उर्दू में कोई फर्क नहीं है ।"[22]

वे राष्ट्रभाषा का प्रयोग नहीं करना राष्ट्रभाषा का अपमान समझते थे । उन्होंने कहा था कि "देश सेवा करने के लिए उत्सुक सब हैं, परन्तु राष्ट्रसेवा, तब तब संभव नहीं जब तक कोई राष्ट्रभाषा न हो ।" [23]

गांधीजी के दो मूलभूत सिद्धांत थे – कताई और हिंदी सीखना । उन्होंने कहा था कि "अगर मुझे अकेले छोड़ दिया जाए तो आप मुझे अपनी शक्ति भर सूत कातने और दत्तचित्त होकर हिंदुस्तानी की पुस्तकों को पढ़ते हुए ही पाएंगे ।"[24] वह तानाशाही के विरोधी थे, पर हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाये जाने के लिए

---

[20] हरिजन सेवक, 15.3.1942

[21] नॉटसन जी.ए., स्पीचेज एण्ड राईटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, 20-4-1935 पृ0 429-30

[22] उपर्युक्त 20-10-1917

[23] अमृत बाजार पत्रिका, जनवरी, 1918

[24] यंग इंडिया, 2-2-1921

तानाशाह बनने को भी तैयार थे । "अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज ही विदेशी माध्यम के जरिए दी जाने वाली हमारे लड़के और लड़कियों की शिक्षा बंद करवा दूं तथा सारे शिक्षकों एवं प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूं या उन्हें बर्खास्त करा दूं ।"[25]

उनके विचार में "हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है, क्योंकि राष्ट्रभाषा पद पर आरूढ़ होने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वसाधारण उस भाषा को आसानी से समझ तथा सीख सकें और यह गुण सिर्फ हिंदी में ही है ।"[26]

वह राष्ट्रभाषा को स्वराज्य प्राप्ति का सशक्त माध्यम मानते थे । उन्होंने कहा था, "मेरे विचार में स्वराज्य प्राप्ति की गति में तीव्रता लाने के लिए स्वदेशी, हिंदू - मुस्लिम एकता तथा राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का प्रचार आवश्यक है ।[27] हिंदी को राष्ट्रभाषा को गौरव प्रदान करने के लिए उन्होंने बार-बार हिंदीतर प्रदेश की जनता से इसे पढ़ने तथा बोलने का आग्रह ही नहीं किया बल्कि हर सभा एवं सम्मेलनों में इसके विकास के लिए प्रस्ताव के लिए प्रस्ताव भी पारित करवाये । गांधीजी के आह्वान पर बम्बई, कलकत्ता के समृद्ध मारवाडियों ने काफी धन राशि मद्रास प्रेसिडेंसी में हिंदी प्रचार के लिए भेंट कीर्र ।[28]

गांधीजी ने हिंदी के प्रसार के लिए गुजराती समाचार पत्र नवजीवन का प्रकाशन अगस्त, 1921 से हिंदी में करना प्रारम्भ किया । वे स्वयं इसके सम्पादक थे । गुजरात के लोगों को हिंदी संस्करण ज्यादा से ज्यादा पढ़ने के लिए वह हमेशा प्रेरित करते थे । [29]

---

[25] 1) यंग इंडिया, 1-9-1921

2) हिंदी नवजीवन, 2-9-1921

[26] लीडर, 21-10-1925

[27] द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, भाग 17, पृष्ठ 481

[28] अग्रवाल मारवाड़ी सम्मेलन, बम्बई, 1920

[29] हिंदी नवजीवन, 17-8-1924

1924 ई. में बेलगांव में हुए कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष पद से पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि "यह कितने दुःख की बात है कि हम स्वराज्य की बात भी अंग्रेजी में करते हैं ।"[30] इसी सम्मेलन में उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि "निश्चित अवधि के अन्तर्गत प्रान्तीय कार्यालयों, विधानमण्डलों एवं अदालतों की भाषा उस प्रान्त की भाषा (देशी भाषा) होनी चाहिए । प्रिवी कौंसिल तथा अन्तिम अपील की अदालत की भाषा हिंदुस्तानी होनी चाहिए, जबकि लिपि देवनागरी या फारसी हो । अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति की भाषा अँग्रेज़ी होनी चाहिए।[31] हिंदी को वह अंर्तप्रान्तीय प्रयोग के लिए उपयुक्त समझते थे, भले ही वह टूटी-फूटी क्यों न हो ।[32] किन्तु इसके साथ-साथ यह भी स्पष्ट करना चाहते थे हिंदी प्रादेशिक भाषाओं का स्थान न ले तथा उसकी अपनी एक मर्यादा हो । इस संबंध में उनके विचार इस प्रकार थे – "यह बात सभी को स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि हिंदी (हिंदुस्तानी) को प्रादेशिक भाषाओं का स्थान कतई नहीं लेना है । उसे अन्र्तप्रान्तीय विचार का माध्यम बनना है और सभी अखिल भारतीय संगठनों की अधिकृत भाषा का स्थान लेना है ।[33] एक अन्य स्थान पर भी उन्होंने स्पष्ट किया था कि "मुझे कहने में जरा भी शक नहीं है कि हिंदुस्तानी सारे हिन्दुस्तानियों के अन्र्तप्रान्तीय व्यवहार के लिए सबसे अच्छी भाषा होगी ।"[34]

उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान कराने के जो प्रयत्न किये उसमें "भाषोतेजक संघ" की स्थापना महत्वपूर्ण स्थान रखती थी । इसका उद्देश्य "प्रत्येक पाठशाला में हिंदी उपयोग बढ़ाना, पारिभाषिक शब्दों पर शोध, विदेशी भाषा का

---

[30] गांधी, अध्यक्षीय उद्बोधन बेलगाम कांग्रेस 'रिपोर्ट ऑफ द 39 इंडियन नेशनल कांग्रेस', दिसम्बर 26, 1924, पृ0 13-14

[31] 1) गांधी, बेलगाम कांग्रेस, दिसम्बर 26, 1924, पृष्ठ 13-14

2) द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, गांधी, भाग-25, पृ0 481

[32] सर्चलाइट, 29-1-1927

[33] यंग इंडिया, 31-1-1929

[34] 1) सम्पूर्ण गांधी वाडमय, खंड-17, नवजीवन ट्रस्ट अहमदाबाद, 1960, पृ0 1009

2) द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, भाग-17, पृ0 97-98

उपयोग राजनीति आदि में नहीं हो इस बात का ध्यान रखना, जहां हिंदी शिक्षक की आवश्यकता हो वहां सहायता देना, बिना कोई शुल्क लिये हिंदी शिक्षक स्वयं-सेवक तैयार करना था । [35]

गांधी जी के प्रयत्नस्वरूप मद्रास में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना हुई । हिंदी साहित्य सम्मेलन के मद्रास अधिवेशन के एक प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस की महासभा तथा कार्यकारिणी समिति ने हिंदी (हिंदुस्तानी) में समस्त कार्यवाही प्रस्ताव पारित किया । इस अवसर पर गांधीजी का अभिभाषण उल्लेखनीय है ।" अंग्रेजों ने यदि अंग्रेजी के स्थान पर प्रांतीय भाषाओं या हिंदी को महत्वपूर्ण स्थान दिया होता तो आज प्रान्तीय भाषाएं आश्चर्यजनक रूप से समृद्ध होतीं । मैं भाषा पर इतना जोर इसलिए देता हूं कि राष्ट्रीय एकता प्राप्ति का यह सबसे महत्वपूर्ण साधन है और जिसका दृढ़ इसका आधार होगा, उतनी ही प्रशस्त हमारी एकता होगी ।" [36]

इससे पहले भी वह 18 मार्च 1920 को श्री वी. एस. श्रीनिवास शास्त्री को लिख चुके थे कि "हिंदी और उर्दू के मिश्रण से निकली हुई हिंदुस्तानी को पारस्परिक संपर्क के लिए राष्ट्रभाषा के रूप के रूप में निकट भविष्य में स्वीकार कर लिया जाए । भावी सदस्य इम्पीरियल कौंसिल में इस तरह काम करने को वचनबद्ध होंगे, जिससे वहां हिंदुस्तानी का प्रयोग प्रारंभ हो सके । [37]

उनका सुझाव था कि हिंदी पुस्तकों की भाषा सरल, सुगम और ग्राह्य हो । "जो लेखक या व्याख्याता चुन चुनकर संस्कृत, अरबी और फारसी के कठिन व जटिल शब्दों का प्रयोग करता है वह देश का अहित करता है । हमारी राष्ट्रभाषा में वे सभी प्रकार के शब्द आने चाहिए, जो जनता में प्रचलित हो गए हैं । जिस भाषा को हम

---

[35] हिंदी नवजीवन, 26.12.1939

[36] 1) द एजुकेशलन फिलॉसाफी ऑफ महात्मा गांधी , पृष्ठ 223

2) यंग इंडिया, 2-2-1921

[37] सम्पूर्ण गांधी वाडमय, उपरोक्त ।

राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं, उसका साहित्य स्वच्छ, तेजस्वी तथा उच्चगामी होना चाहिए ।"[38]

हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाये जाने के लिए सभी हिंदीत्तर प्रांत के निवासियों को हिंदी सीखने और बोलने की सलाह देते थे । उनका मानना था कि हिंदी इतनी सरल भाषा है कि कोई भी गैर हिंदी भाषी अल्पप्रयास द्वारा आसानी से सीख सकता है । [39]

महात्मा गांधी ने नागरी में बँगला और बँगला में नागरी पुस्तकें तैयार करने के लिए आह्वान किया । "बँगला और असमिया भाषाओं में बहुत से शब्द हिंदी से मिलते जुलते हैं । इस विषय पर परिचय तैयार करना, हिंदी, बँगला और बँगला हिंदी के छोटे-छोटे शब्दकोश तैयार करना और नागरी लिपि में बँगला पुस्तकें लिपि में हिंदी पुस्तकें प्रकाशित करना वे जरूरी समझते थे ।[40] इस प्रकार गांधीजी ने आजीवन हिंदी

[38] हरिजन बन्धु, 18-8-1946

[39] 1) हिंदी नवजीवन, 13-3-1930

2) ट्वार्डस न्यू एजुकेशन, नवजीवन प्रकाशन 1953, पृष्ठ 69-70

[40] महात्मा गांधी ट्वार्डस न्यू एजुकेशन, पृ0 69, 70

को राष्ट्रभाषा के रूप में मान दिलाने का प्रयत्न किया । उनके प्रयत्न स्वरूप 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तब संविधान में हिंदी को संघ की राजभाषा और देवनागरी को राजलिपि स्वीकृत की गई ।

महात्मा गांधी एवं हिंदी

• सतधारी लाल साहु

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में महात्मा गांधी एवं हिंदी भाषा के प्रति उनका दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण विषय है । आज भी यह विषय प्रासंगिक है अंतः इसका तथ्यात्मक ब्यौरा निश्चय ही जन सामान्य की जानकारियों को बढ़ाएगा एवं उनकी सोच को नया आयाम देगा ।

अगर हमें एक राष्ट्र होने का अपना दावा सिद्ध करना है तो हमारी अनेक बातें एक सी होनी चाहिए, इस बात पर सहमति है कि यह माध्यम हिंदुस्तानी ही होना चाहिए। जो हिंदी और उर्दू के मेल से बने और जिसमें न तो संस्कृत की और न ही फारसी की भरमार हो । हमारे रास्ते की सबसे बड़ी रूकावट हमारी देशी भाषाओं की लिपियों है । अगर एक सामान्य लिपि बनाना संभव हो तो एक सामान्य भाषा का हमारा जो स्वप्न है उसे पूरा करने के मार्ग की एक बड़ी बाधा दूर हो जाएगी । [41]

गांधी जी ने कहा -

मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियां क्यों न हों मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूंगा जिस तरह अपनी मां की छाती से । वही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती है । मैं अंग्रेजी को भी उसकी जगह प्यार करता हूं लेकिन अगर अंग्रेजी उस जगह को हड़पना चाहती है जिसकी वह हकदार नहीं है तो मैं उससे सख्त नफरत करूंगा । यह बात मानी हुई है कि अंग्रेजी राज सारी दुनियां की भाषा बन गई है इसलिए मैं उसे दूसरी जबान के तौर पर जगह दूंगा । लेकिन विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में, स्कूलों में नहीं। वह कुछ लोगों के सीखने की चीज हो सकती है, लाखों करोड़ों की नहीं । आज जब हमारे पास प्राथमिक शिक्षा को भी मुल्क में लाजमी बनाने बनाने के जरिये नहीं हैं तो हम अंग्रेजी सिखाने के जरिये कहां से जुटा सकते हैं ? रूस ने बिना अंग्रेजी के विज्ञान में इतनी उन्नति की है कि आज अपनी मानसिक गुलामी की वजह से ही हम यह

---

[41] गांधीजी-संगाहक-आर के प्रभु – डॉ राजेन्द्र प्रसाद – "मेरे सपनों का भारत" , पेज संख्या-214 नवजीवन प्रकाशन मंदिर , अहमदाबाद 1960

मानने लगे है कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम चल नहीं सकता । मैं इस चीज को नहीं मानता । [42]

गांधी जी ने कहा

हिंदी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तरी प्रान्त होगी तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा । यदि हिंदी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। हिंदी भाषा वह भाषा है जिसको उत्तर में हिंदू व मुसलमान दोनों बोलते हैं जो देवनागरी तथा फारसी लिपि में लिखा जाती है ।[43]

समूचे हिंदुस्तान के साथ व्यवहार करने के लिए हमको भारतीय भाषाओं में एक ऐसी भाषा की जरूरत है जिसे आज ज्यादा से ज्यादा तादाद में लोग जानते और समझते हों और बाकी लोग जिसे झट सीख सकें । जिसमें शक नहीं कि हिंदी ही ऐसी भाषा है । राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् 1925 में अपने कानपुर अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास किया था उसमें हिंदी भाषा को हिंदुस्तानी कहा था और तब से सिद्धांत में ही क्यों न हो हिंदुस्तानी राष्ट्रभाषा मानी गई है । [44]

गांधी ने कहा था कि मैं तमिल, तेलुगू, मलयालय एवं कन्नड़ इन भाषाओं को संस्कृत की पुत्रियां मानता हूं तो भी ये हिंदी, उड़िया, बँगला, आसामी, पंजाबी, सिंधी, मराठी, गुजराती से भिन्न हैं जिनका व्याकरण हिंदी से बिल्कुल भिन्न है । इनको संस्कृत की पुत्रियां कहने से मेरा अभिप्राय इतना ही है कि इन सबमें संस्कृत शब्द काफी हैं और जब संकट आ पड़ता है तो संस्कृत माता को पुकारती है । प्राचीन काल

[42] हरिजन सेवक 25-8-1947 उपर्युक्त, पेज संख्या- 221

[43] कि. घ. मशरूवाला अनुवादक काशीनाथ त्रिवेदी – "गांधी विचार दोहन", उपर्युक्त, पेज संख्या 174

[44] गांधीजी अनुवादक काशीनाथ त्रिवेदी –"रचनात्मक कार्यक्रम उसका रहस्य और स्थान", उपर्युक्त, पेज संख्या 38

में भले ही यह स्वतंत्र भाषा रही हो पर अब तो यह संस्कृत से शब्द लेकर अपना गौरव बढ़ा रही है । [45]

इन्दौर में सन् 1918 में हिंदी साहित्य सम्मेलन में गांधी जी ने कहा --

दक्षिण में हिंदी प्रचार सबसे कठिन कार्य है तथापि 18 वर्षों से हम व्यवस्थित रूप से कार्य करते आये हैं । इसके फलस्वरूप इन वर्षों में 6 लाख दक्षिण भारतीयों ने हिंदी में प्रवेश किया और स्कूलों में हिंदी की शिक्षा प्रारंभ हुई । तमिलनाडु में भी हिंदी प्रवेश करना मुश्किल नहीं है क्योकि इस सीधी-सादी बात पर ध्यान दीजिए कि 90 प्रतिशत से भी ज्यादा हमारे देशवासी अशिक्षित हैं । हमें नये सिरे से उनकी शिक्षा शुरू करनी होगी । तब सामान्य लिपि द्वारा ही हम उन्हें शिक्षित बनाने की शुरूआत क्यों न करें ? यूरोप में सामान्य लिपि रोमन का प्रयोग किया गया वह बिल्कुल सफल रहा । मेरी राय में अन्य प्रांतों में हिंदी प्रचार सम्मेलन का मुख्य कार्य बनाना चाहिए । यदि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना है तो प्रचार कार्य सर्वव्यापी और सुसंगठित होना चाहिए । सम्मेलन के केन्द्र में हिंदी शिक्षकों के लिए एक विद्यालय होना चाहिए जिसमें एक ओर तो हिंदी प्रांतवासी शिक्षक तैयार किये जायें और उनको जिस प्रांत के लिए तैयार होना चाहे उस प्रांत की भाषा सिखाई जाए और दूसरी और अन्य प्रांतों के भी छात्रों को भर्ती करके उन्हें हिंदी की शिक्षा दी जाए जो हिंदी की समृद्धि में भूमिका निभाएंगे । [46]

जब आप कर्नाटक में रहते हैं और कर्नाटक से बाहर आपकी दृष्टि नहीं दौड़ती तब तक आपके लिए कन्नड़ का ज्ञान काफी है । कर्नाटक वाले सिंध या संयुक्त प्रांत वालों के साथ संबंध कैसे कायम कर सकते हैं , जब कोई माध्यम हो, हम और आप

---

[45] गांधी जी संगाहक आर. के. प्रभु प्राक्कथन डॉ राजेन्द्र प्रसाद – "मेरे सपनों का भारत", उपर्युक्त, पेज संख्या 228-29

[46] गांधी जी द्वारा तारीख 20/4/1935 को इंदौर में हिंदी साहित्य सम्मेलन के 24 वें अधिवेशन के सभापति के पद से दिये गये भाषण के अंश ग्रंथ – *गांधी जी* अनुवादक राम नारायण चौधरी – "सच्ची शिक्षा" – नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, जुलाई 1950, पेज संख्या 305, 306, 307

चाहते हैं कि करोड़ों लोग अंतरप्रान्तीय संबंध स्थापित करें । कश्मीर से कन्या कुमारी एवं कराची से डिब्रूगढ़ तक संचार का माध्यम हिंदी को छोड़कर और कोई साधन नहीं है । अंग्रेजी हमारी राष्ट्र भाषा नहीं बन सकती । अंग्रेजी, अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के लिए और पश्चिमी ज्ञान के लिए आवश्यक है । लेकिन जब उसे वह स्थान दिया जाता है जिसके योग्य वह है ही नहीं, तो मुझे दुःख होता है । [47]

जब मैं दक्षिण अफ्रीका में था तब भी मैं जानता था कि संस्कृत से निकली हुई सभी भाषाओं की लिपि देवनागरी होनी चाहिए और मुझे विश्वास है कि देवनागरी के द्वारा द्रविड़ भाषायें भी आसानी से सीखी जा सकती हैं । मैंने तमिल, तेलगू को और कुछ दिन तक कन्नड़, मलयालय को भी उनकी अपनी लिपियों द्वारा सीखने का प्रयास किया है । मैं आपसे कहता हूं कि मुझे साफ दिखाई पड़ रहा था कि इन चारों भाषाओं की लिपि देवनागरी ही होती तो मैं उन्हें थोड़े ही समय में सीख सकता था । लेकिन जब मैंने देखा कि मुझे चार – चार लिपियां सीखनी होंगी तो मैं मारे डर के घबरा उठा । मेरी तरह जिसे चारों भाषायें सीखने का उत्साह है उसके लिए यह कितना बड़ा बोझ है ? और क्या यह समझाने के लिए भी किसी दलील की जरूरत है कि दक्षिण वालों के लिए अपनी मातृभाषा के सिवाय दूसरी तीन भाषायें सीखने के लिए देवनागरी लिपि अधिक से अधिक सुविधाजनक हो सकती है ? राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रश्न के साथ लिपि का प्रश्न मिलाना न चाहिए मैंने उसका उल्लेख केवल यह दिखाने के लिए किया है कि सभी भाषायें सीखने वालों को लिपि के कारण कितनी कठिनाई होती है । [48]

एक लिपि, एक भाषा के प्रचार को बहुत आसान कर देगी पर दोनों के काम निश्चित हद तक साथ-साथ चल सकते हैं । हिंदी या हिंदुस्तानी के प्रचार का उद्देश्य यह कदापि नहीं कि वह प्रान्तीय भाषाओं का स्थान ग्रहण कर ले यह तो उनकी सहायता के लिए और अप्रान्तीय कामों के लिए है । परंतु भिन्न-भिन्न प्रान्तों की

---

[47] गांधी जी के द्वारा बंगलोर में हिंदी के उपाधि वितण समारोह के अवसर पर दिये गये भाषण के अंश । उपर्युक्त, पेज संख्या 310-312

[48] गांधी जी द्वारा हरिजन बंधु पत्रिका दिनांक 5/7/1936 में प्रकाशित लेख के अंश । उपर्युक्त, पेज संख्या 313

भाषाओं का अध्ययन करने में लोगों को कठिनाई न हो इसके लिए जरूर ही एक लिपि के प्रचार का यह उद्देश्य है कि यह दूसरी तमाम लिपियों का स्थान ग्रहण कर ले । खुशकिस्मती यह है कि प्रान्त-प्रान्त के बीच ऐसा कोई संघर्ष नहीं है । इसलिए इस सुधार से अनेक दिशाओं में प्रान्तों का गहरा मेल हो सकता है उसकी हिमायत करना वांछनीय है और यह भी नहीं भूल जाना चाहिए कि राष्ट्र का बहुजन समाज बिल्कुल निरक्षर है । उस पर भिन्न लिपियों का बोझ लादना अपने हाथों और पैरों पर कुल्हाड़ी मारना होगा । यूरोप कोई एक राष्ट्र नहीं है फिर भी उसने एक सामान्य रोमन लिपि स्वीकार कर ली है । सामान्य लिपि स्वीकार कर लेने के परिणामस्वरूप प्रान्तीय व्यवहार विनिमय सरल हो जाने से यूरोप की तमाम भाषायें समृद्ध हो गई हैं। जब भारत एक राष्ट्र होने का दावा करता है, और है भी, तो फिर उसकी लिपि एक क्यों न हो ? यह अन्तर्प्रान्तीय सम्पर्क बढ़ाने के लिए आवश्यक है । बंगाली लिपि में लिखी हुई "गीताजंली" को सिवाय बंगालियों के और पढ़ेगा कौन ? परंतु यदि वह देवनागरी लिपि में लिखी जाए तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं । [49]

तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़ तो जरूर रहनी चाहिए और रहेगी किन्तु इन प्रदेशों के अशिक्षितों को हम देवनागरी लिपि के द्वारा इन भाषाओं के साहित्य की शिक्षा क्यों न दें ? हम जो राष्ट्रीय एकता प्राप्त करना चाहते हैं उसकी खातिर देवनागरी को सामान्य लिपि स्वीकार करना आवश्यक है । इसमें कोई कठिनाई नहीं है बात सिर्फ यह है कि हम अपनी प्रान्तीयता और संकीर्णता छोड़ दें । तमिल और उर्दू लिपियां मुझे पंसद न हो सो बात नहीं । मैं इन दोनों को जानता हूं लेकिन, मातृभूमि की सेवा में जिसके लिए मैंने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया है और जिसके बिना मेरा जीवन निरर्थक होगा, मुझे सिखाया गया है कि हमारे देश के लोगों पर जो अनावश्यक बोझ है उनसे उन्हें मुक्त करने का हमें प्रयत्न करना चाहिए । तमाम लिपियों को जानने का बोझ अनावश्यक है और उससे आसानी से बचा जा सकता है । इसलिए सभी प्रान्तों के साहित्यकारों से मैं प्रार्थना करूंगा कि वे इस संबंध में अपने

---

[49] गांधी जी द्वारा "हरिजन सेवक" पत्रिका दिनांक 15/8/1936 में प्रकाशित लेख के अंश । उपर्युक्त, पेज संख्या 316, 320, 321

भेदभावों को भुलाकर इस अत्यन्त आवश्यक विषय पर एकमत हो जायें तभी भारतीय साहित्य परिषद अपने उद्देश्य में सफल हो सकती है । [50]

देश के अनेक विद्वानों ने फारसी, अरबी व अंग्रेजी भाषा में महारत हासिल की, अध्ययन में समय लगाया वह सब समय अपनी मातृभाषा को दिया होता तो उनकी मातृभाषा कितनी समृद्ध हो जाती ? सर चन्द्रशेखर रमण की सारी खोजें भी अंग्रेजी में ही हैं । जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते उनके लिए वे मुहरबन्द पुस्तक की तरह है किन्तु रूस को देखिए । रूस वालों ने राज्य क्रांन्ति से पहले यह निश्चय कर लिया था कि वे अपनी पाठ्यपुस्तकें रूसी भाषा में ही लिखवायेंगे । दरअसल इसी से लेनिन के लिए राज्य क्रान्ति का रास्ता तैयार हुआ । जब तक कांग्रेस यह निश्चय न कर ले कि उसका सारा कामकाज हिंदी में और उसकी प्रान्तीय संस्थाओं का प्रान्तीय भाषाओं में ही होगा, तब तक वास्तविक रूप से हम जन संपर्क स्थापित नहीं कर सकते । यह बात नहीं कि भाषा के पीछे मैं दीवना हो गया हूं । मैं भाषा पर इतना जोर इसलिए देता हूं कि राष्ट्रीय एकता प्राप्त करने का यह एक बहुत जबरदस्त साधन है और जिसका दृढ़ इसका आधार होगा उतनी ही प्रशस्त हमारी एकता होगी । [51]

गांधी जी अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को दोषपूर्ण मानते थे । इनका विचार था कि विद्यार्थियों को बुनियादी शिक्षा दी जाए जिसका माध्यम हिंदी हो । मातृभाषा में शिक्षा देने से विद्यार्थियों को ज्ञानार्जन में आसानी होगी जबकि अंग्रेजी भाषा में शिक्षा देने से अत्यधिक समय भाषा सीखने में नष्ट होगा । मातृभाषा दिल की भाषा है जबकि

---

[50] गांधी जी द्वारा भारतीय साहित्य परिषद्, मद्रास की दूसरी बैठक के सभापति पद से दिये गये भाषण के अंश । उपर्युक्त, पेज संख्या 326

[51] गांधी जी द्वारा "हरिजन सेवक" पत्रिका दिनांक 10/4/1937 में प्रकाशित अंश । उपर्युक्त, पेज संख्या 328-329

अंग्रेजी दिमाग की । हम अपनी भाषा में ज्ञान को दिलो दिमाग में आसानी से महसूस कर सकते हैं जबकि अंग्रेजी भाषा में यह संभव नहीं ।[52]

गांधी जी की राय में धार्मिक बातों का उपयोग करना छोड़ा नहीं जा सकता । अनुवाद कितना ही शुद्ध क्यों न हो किन्तु वह मूल मंत्रों का स्थान नहीं ले सकता । मूल मंत्रों में अपनी एक विशेषता है जो अनुवाद में नहीं आ सकती । हम इन मंत्रों को जिनका पाठ शताब्दियों से संस्कृत में होता रहा है बदल नहीं सकते ।[53]

हमारी भाषा भावपूर्ण एवं संस्कारित है हम अपनी भाषाओं के भाव दूसरी भाषा में नहीं ढूंढ सकते । गांधी जी के प्रसिद्ध भक्ति गीत -

रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम ।
ईश्वर अल्लाह तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान ।।

का अंग्रेजी अनुवाद क्या वैसा ही महसूस करायेगा ?

प्रस्तुत शोध पत्र में गांधीजी हिंदी के साहित्य सम्मेलन, कांग्रेस सम्मेलन के भाषणों एवं पत्र पत्रिकाओं के आलेखों के माध्यम से एक भाषा हिंदी एवं एक लिपि देवनागरी की खुल कर वकालत की थी । उन्होंने एक भाषा एक लिपि के लिए विभिन्न तर्क एवं उदाहरण प्रस्तुत कर भारतीय साहित्य परिषद एवं कांग्रेस के सामने कार्य योजना भी प्रस्तुत की । उनकी प्रबल इच्छा थी कि एक भाषा एक लिपि होने से पूरे देश में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक एकरूपता होगी जिससे देश एकता के सूत्र में बध जायेगा । देश में एकता होगी तभी देश प्रेम की भावना जागृत होगी और स्वाधीनता आंदोलन मजबूत होगा । इस प्रकार गांधी जी हिंदी भाषा एवं देवनागरी लिपि को स्वाधीनता आंदोलन का एक सशस्त माध्यम मानते थे ।

---

[52] मोहम्मद शमीम – "छत्तीसगढ़ के छात्र आंदोलन में गांधीवादी आंदोलनों की भूमिका" शोध प्रबंध पेज संख्या 51-52, पंडित रवि शंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, छतीसगढ़

गांधी जी इस बात को स्वीकार करते थे, कि राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय एकता की कड़ी है सांस्कृतिक सामाजिक सार्वभौम जीवन मूल्यों की आध्यात्मिक शक्ति है । स्वतंत्रता के बाद हिंदी को राष्ट्रभाषा का रूप दिलाने का श्रेय गांधी को ही है ।

स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का योगदान

• डा. अरूण कुमार श्रीवास्तव

कला प्रकृति का प्रतिबिम्ब है । अनादि काल से यह मानव प्रकृति के रम्य और विभिन्न रूपों को जीवन के विशाल 'कैनवास' पर उतारती चली आ रही है । चित्र कला, संगीत-कला, साहित्य, शिल्प और नाट्य कला की भांति 'चित्रपट' उनमें एक नवीन रूपभिव्यक्ति है ।[54] यह राष्ट्रीय एकता और विश्व बन्धुत्व की भावना का पोषण करता है । चलचित्र, कला और देश दोनों की सेवा करता है तथा जनता तक पहुंचने वाला सबसे अच्छा माध्यम है ।[55] स्वतंत्रता प्राप्ति वह संधि रेखा कही जा सकती है जहां भारतीय सिनेमा पचास वर्ष का सफर तय करके आया था । मूलतः आजादी के तीस वर्ष पहले से, सही अर्थों में भारतीय सिनेमा की शुरूआत कही जा सकती है ।[56] सन् 1931 में प्रथम सवाक् सिनेमा *आलम आरा* को दर्शकों ने पहली बार बड़े पर्दे पर बोलती हुई फिल्म के रूप में सुना और देखा था । इसके बाद से स्वतंत्रता तक के सिनेमा का इतिहास मुख्यतः राष्ट्रीय विचारों और नैतिकतावादी दृष्टिकोण से प्रेरित था।

स्वतंत्रता आंदोलन, गांधीवादी विचार-धारा तथा समाज में चल रहे सुधारवादी आंदोलन में एक उत्प्रेरक का काम करने की दृष्टि से इन फिल्मों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । *दुनियां न माने (1937), देवदास (1931), अछूत कन्या (1936), पुकार (1939), सिकन्दर (1941), आदमी (1939), पड़ोसी (1941)* तथा *नीचा नगर (1946)* जैसी प्रतिबद्ध एवं सफल फिल्मों के द्वारा धार्मिक, मिथकीय एवं सामाजिक कथानकों के माध्यम से अपने युग को अभिव्यक्त किया गया ।[57] किसी देश की

---

[54] मित्तल, महेन्द्र , भारतीय चलचित्र-पृष्ठ संख्या 1

[55] वही – पृष्ठ संख्या 3

[56] अग्रवाल, विजय, आज का सिनेमा, पृष्ठ संख्या 21

[57] वही – पृ० सं० 21

सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक परंपरा का परिचय प्राप्त करने के लिए जिन साधनों का सहारा लिया जाता है, उनमें नाट्य कला एवं सिनेमा का विशिष्ट स्थान है ।[58] भारतवर्ष के स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का अतुल्य एवं अमूल्य योगदान रहा है । देश की जनता ने चाहे आजादी से पहले का समय हो या आजादी के बाद का समय, हमेशा हिंदी सिनेमा में अपनी रूचि दिखाई है क्योंकि हिंदी सिनेमा ने उनके अन्त: करण को जागृत करके उन्हें सामाजिक धार्मिक एवं राजनैतिक कुरीतियों से लड़ने एवं उन्हें दूर करने योग्य बनाया । [59] सन् 1919 में जालियांवाला बाग़ से सन् 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन तक की अवधि में देश का मध्यवर्ग राजनैतिक रूप से अधिक चेतन हो चुका था । यद्यपि उसकी इस चेतना में गुलामी की हीनभावना भी परिलक्षित होती थी । गुलामी के साथ देश में धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक गुलामी भी व्याप्त थी ।[60] इसी समय विश्व में आदर्शों को लेकर लड़ाई छिड़ी। अनेक प्रचलित वादों में सत्य की शक्ति को जांचने के लिए बुद्धिवादी मनुष्य, विज्ञान विषय का सहारा लेकर संहार करने लगा ।

हमारे गुलाम देश में महायुद्ध के कारण एक नए रूप से राजनैतिक चेतना जागृत हुई जिससे उसके विद्रोह ने अपनी निश्चित दिशा का वास्तविक ज्ञान पाया ।[61] युद्ध के प्रारंभिक वर्षों में *बाम्बे टाकिज* देश के जवान दिलों पर हुकूमत करती थी । देश में सिनेमा का प्रचार इस जमाने में बहुत अधिक हुआ ।[62] सन् 1942 मे ऐतिहासिक अगस्त क्रांति हुई । अपना खोया हुआ गौरव वापस पाने के लिए एवं महायुद्ध से प्रेरित होकर एक नए उत्साह के साथ बढ़ने के लिए **करो या मरो** की भावना को लेकर जनता ने अपने आक्रोश को कार्य रूप में परिणत किया ।[63] युद्ध के

---

[58] नागर, अमृत लाल, संकलन एवं संपादन, डा० शरद नागर, फिल्म क्षेत्र – पृ० सं० 39

[59] वही

[60] वही, पृ० सं० 42

[61] वही

[62] वही

[63] वही, पृ० सं० 44

उत्तर कालीन चल-चित्रों में जो अधिकांशतः पौराणिक, ऐतिहासिक और धार्मिक थे, एक बात जो खास तौर पर देखने में आती थी वह थी, जोशीले राजनीतिक संवादों का होना । अंग्रेजों के लिए हर हिंदुस्तानी दिल में 1942 के बाद जो गुस्सा और नफरत भरी हुई थी, जिस आजादी के लिए वह लड़ा और बुरी तरह कुचला गया था, वह आजादी की भावना मरी नहीं ।[64]

भारत में 5 मार्च, 1918 को सिनेमैटोग्राफ एक्ट लागू किया गया । इस एक्ट का संबंध विशेष रूप से देश की राजनैतिक चेतना से था, न कि सांस्कृतिक चेतना से। जहां भी अंग्रेजों को यह लगता कि किसी फिल्म विशेष से स्वतंत्रता का संदेश फैलाने की कोशिश हो रही है, वहीं वह दृश्य सेंसर की कैंची का शिकार हो जाता । सन् 1921 में एक फिल्म बनी थी – *भक्त विदुर* । उसमें द्वारकादास संपत, विदुर बने थे, जो दुबले-पतले और लंबे कद के थे । भक्त विदुर के शरीर पर एक धोती थी और हाथ में एक छड़ी । ब्रिटिश सरकार ने इस भक्त विदुर को महात्मा गांधी का प्रतीक मान कर उस पर प्रतिबंध लगा दिया । कुछ इसी तरह की घटना *वन्दे मातरम* फिल्म के साथ भी हुई । अंग्रेजों के लिए वंदे मातरम् शीर्षक राष्ट्रवादी चेतना को जगाने वाला था । इसलिए इस फिल्म के शीर्षक में आश्रम शब्द जोड़ कर तसल्ली पा ली गई । वही शांताराम को अपनी फिल्म *स्वराज तोरण* के उस दृश्य को पूरी तरह हटाना पडा था, जिसमें शिवाजी के सैनिक, दुश्मनों से अपने किले को आजाद कराकर स्वतंत्र ध्वज फहराते हैं । यह फिल्म बाद में *उदय काल* के नाम से प्रदर्शित हुई ।[65]

ऐसा नहीं था कि यह सब कुछ भारत में बनाई जाने वाली फिल्मों के साथ ही होता था उस समय भारत में अंग्रेजी फिल्में भी आने लगी थी । सेंसर बोर्ड फिल्म के संवादों पर सबसे तीखी निगाह रखता था । उसी दौरान एक फिल्म आई थी – *डच ऑफ दी यू एस ए* । इस फिल्म में एक संवाद था – उन्होंने उस दिन का सपना देखा, जब उनकी सरकार जनता द्वारा चुनी जाएगी और जनता के लिए काम करेगी । ब्रिटिश सरकार ने स्वतंत्रता की भावना से *ओत-प्रोत* इस वाक्य को बदल दिया था – उन्होंने सपना देखा कि उनके देश में शांति और संतोष छा गया है । इसी प्रकार स्वयं

---

[64] वही, पृ0 सं0 45

[65] अग्रवाल विजय, आज का सिनेमा, पृ0 सं0 42

अपने देश की ही बनी एक फिल्म *दि फ्लाइट कमांडर* के इस वाक्य को तो पूरी तरह से हटा दिया गया था- साथियों, हम कब तक इन विदेशियों का हस्तक्षेप बर्दाश्त करते रहेंगे ।[66] राष्ट्रीय भावनाओं को इस दशक में *आजादी, जन्म भूमि* और *वहां* नामक चलचित्रों की पटकथाओं में प्रदर्शित किया गया । *बाम्बे टाकिज* के चलचित्र *जन्मभूमि और प्रभात के वहां* (बिओण्ड दि होराइजन) में दासता के विरूद्ध क्रान्तिकारी-स्वरों को सजीवता के साथ ध्वनित किया गया था और देश में युवा-वर्ग के ह्दय की कसमसाहट इनमें प्रकट की गई थी । ये चलचित्र उस समय देश में चल रहे स्वाधीनता–संग्राम से प्रेरित होकर निर्मित किये गये थे । अपने युग के ये महत्वपूर्ण चलचित्र हैं किन्तु वास्तविक जीवन में भारतवासियों के ह्रदय में देश-भक्ति और स्वाधीनता संग्राम के प्रति जैसा उत्साह प्रकट किया जा रहा था, उसका यथार्थ प्रतिबिम्ब इन चलचित्रों में दिखायी नहीं दिया । उसके मूल में ब्रिटिश – सत्ता का तत्कालीन कठोर अंकुश ही था, जो सेंसर बोर्ड के रूप में कार्य कर रहा था । ऐसा कहा जा सकता है ।[67] अपने नाटकों के अनुभव के आधार पर सोहराब मोदी यह समझ चुके थे कि उनकी धीर-गंभीर आवाज तथा स्वरों का उतार-चढ़ाव सिनेमा घर में गूंजकर दर्शकों के दिल और दिमाग पर जादू कर देता है, इसलिए उन्होंने ऐसे कथानकों पर फिल्म बनाना अधिक व्यावहारिक समझा, जिसमें इस तरह के संवाद और आवाज की संभावना हो । सन् 1937 में उन्होंने *आत्मतंरग* और सन् 1938 में *डाइवोर्स, जेलर* और *मीठा जहर* फिल्में बनाई । अगले ही वर्ष सन् 1939 में उन्होंने उस फिल्म का निर्माण किया, जिसके लिए आज भी सोहराब मोदी जाने जाते हैं । यह फिल्म थी – जहांगीर की न्याय व्यवस्था को दर्शाने वाली *पुकार* यह फिल्म सुपरहिट रही ।

दो वर्ष बाद ही सन् 1941 में उन्होंने फिल्म *सिकन्दर* बनाई और उसमें पोरस का अभिनय उन्होंने स्वयं किया । यह एक बड़े कैनवास की फिल्म थी, जबकि उस समय तक इतने बड़े बजट की फिल्म बनाने का प्रचलन शुरू नहीं हुआ था । इस फिल्म में पुरू की सेना का हाथी दस्ता तथा सिकन्दर की सेना के घुड़सवार दस्ते के युद्ध के प्रसंग बहुत प्रभावशाली बन पड़े हैं । यह द्वितीय विश्वयुद्ध का समय था ।

---

[66] वही

[67] वही, पृ0 सं0 108-109

ब्रिट्रिश सरकार को *सिकन्दर* फिल्म में दिखाया गया यह प्रसंग ठीक नहीं लगा जिसमें उसके सैनिक विद्रोह कर देते हैं । हालांकि ब्रिटिश सरकार ने फिल्म को पूरी तरह तो प्रतिबंधित नहीं किया लेकिन छावनियाँ में इसके प्रदर्शन पर रोक लगा दी ।[68] जातिवाद पर आधारित चलचित्रों में विशेषकर उन कथानकों का चयन किया गया, जिनमें अछूतोद्धार की समस्या को उठाया गया था । छुआछूत के विरूद्ध चलाए गए महात्मा गांधी के आंदोलन का प्रभाव इन चलचित्रों के कथानकों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए मद्य-निषेध आंदोलन का प्रभाव *बराण्डी की बोतल* चलचित्रों में देखा गया ।[69] *अपना घर* में देवकी बोस ने प्रगतिवादी विचारधारा को स्वर प्रदान किए थे । प्रमुख रूप से अत्याचार, हिंसा और दमन के विरूद्ध इसमें आवाज उठायी गई थी । इसके संवाद और गीत स्पष्टतः राष्ट्रीय – भावनाओं का परिचय देते हैं । इस चलचित्र के एक गीत की पंक्तियां देखिए ।

मिटे गुलामी, लेंगे आजादी,
देश का झण्डा ऊँचा कर ।
अपना देश है अपना घर ।।

चालीस करोड़ में, चालीस करोड़ भारतवासियों की स्वाधीनता तथा समाज के नवोत्थान की भावनाओं को संजोया गया था । अपने देश में असामाजिक-तत्वों, विशेषकर तस्कर व्यापार से राष्ट्रीय-हित को नुकसान पहुंचाने वाले भारतवासियों की भ्रष्टाचार फैलाने वाली दुष्प्रवृति पर प्रहार किया गया था । *पहला आदमी* और समाधी चलचित्रों का संबंध *आजाद हिंद फौज* के राष्ट्रीय – अभियानों को ग्रहण करने वाले कथानकों से था जिनमें मातृभूमि के प्रति भारतीयों के प्रेम की उत्कृष्ट–भावना का चित्रण किया गया था ।[70] यह दशक राष्ट्रीय जीवन के उत्थान की ओर बढ़ाये गए भारतवासियों के चरण-चिन्हों को अंकित करने में प्रयत्नशील रहा और देश के सदियों से पराधीन जीवन और स्वतंत्रता के प्रातः काल में राष्ट्रीय – भावनाओं का उन्मेष मुखरित होता रहा ।

---

[68] वही

[69] मित्तल, महेन्द, भारतीय चलचित्र, पृ० सं० 349

[70] वही, पृ० सं० 354

राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपनाकर जो कथा-चित्र आये, उनमें *प्रभात का पड़ोसी* और *हम एक हैं* तथा *सेमल का फूल*, ये तीन चलचित्र प्रमुख हैं । ये तीनों चलचित्र साम्प्रदायिक-भावना के विरोध में प्रस्तुत किए गए थे । प्रभात के दोनों चलचित्रों में हिंदू-मुस्लिम एकत्व की भावना को अत्यधिक सजीवता और मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया था । राष्ट्रीय–भावनाओं को ग्रहण करके जिन अन्य कथा-चित्रों को इस दशक में प्रदर्शित किया गया, उनमें *अपना घर, चालीस करोड़, नमक, अपना देश, संग्राम, पहला आदमी* और समाधि आदि चलचित्रों का समावेश किया जा सकता है ।[71] इन चलचित्रों में प्रभात का *वही* चलचित्र, जिसमें दासता के विरूद्ध एक शक्तिशाली आवाज बुलन्द की गई थी, एक उल्लेखनीय चलचित्र था । साथ ही *बाम्बे टाकीज* का *जन्मभूमि, कृष्ण फिल्म कंपनी* का *हिंदुस्तान हमारा* और *चन्द्रा आर्ट* का *वतन की पुकार* तथा रंजीत का *छीन ले आजादी*, कुछ महत्वपूर्ण चलचित्र थे । सन् 1947 में *रंजीत मूवीटोन* के चलचित्र *छीन ले आजादी* के साथ ही भारतवासियों ने अंग्रेजों के हाथ से वास्तव में आजादी छीन ली और देश स्वतंत्र हो गया । इन चलचित्रों की कथाएं, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति करने वाली ही थीं ।[72] इस प्रकार यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि भारत के स्वाधीनता संघर्ष में हिंदी सिनेमा का अभूतपूर्व एवं महत्वपूर्ण योगदान है ।

---

[71] वही, पृ0 सं0 353-354

[72] वही, पृ0 सं0 229

आजादी की लड़ाई में हिंदी सिनेमा
(1930-1947)

• चंद्रभूषण गुप्त 'अंकुर'

समाजवादी चिंतक डॉ. राममनोहर लोहिया ने फिल्मों के बारे में एक टिप्पणी की थी – "भारत को एक करने वाली दो ही शक्तियां हैं, पहला गांधी दूसरी फिल्में ।"[73] किंतु कितनी विचित्र बात है कि फिल्मों पर गांधी का वैसा वरदहस्त कभी नहीं रहा, जैसा साहित्य एवं पत्रकारिता पर था । गांधीजी ने अपनी जिंदगी में शायद एक ही बोलती फिल्म देखी थी । 'रामराज्य', वह भी गीतकार रमेश गुप्ता द्वारा इसके गीत सुनने के बाद ।[74] जबकि आज हमारी पीढ़ी के लोग जिन्होंने गांधी को नहीं देखा है, वह चलते – फिरते बोलते गांधी की एक झलक पाते हैं तो बी. बी. सी. एवं अन्य एजेंसियों द्वारा समय-समय पर बनाई गई डाक्यूमेंट्री फिल्मों द्वारा ही या फिर रिचर्ड एटनबरा की फिल्म 'गांधी' या 'मेकिंग ऑफ ए महात्मा' जैसी फिल्मों से ।[75]

गांधी के जीवन का यह द्वंद्व वस्तुतः संपूर्ण मध्यवर्गीय भारतीय जनमानस का द्वंद्व था । मध्यवर्गीय परिवारों में यदि कोई युवा अच्छी पुस्तकें बढ़ता था तो जहां उसे प्रोत्साहन मिलता था, वहीं अच्छी फिल्में देखने पर भी फटकार की उम्मीद रहती थी ।[76] भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का प्रणेता और वाहक मूलतः भारत का मध्यवर्ग ही था । अतः जाहिर है, इस वर्ग ने जिन चीजों को महत्व दिया, उन्हें महत्व मिला और जिन्हें खारिज किया, वह खारिज रहीं । वैसे इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि

---

[73] ओंकार शरद, लोहियाः एक जीवनी, लखनऊ, 1975, पृ0 12

[74] राजेन्द्र कला, जब गाना सुनकर बापू ने फिल्म देखी, साप्ताहिक हिंदुस्तान, नई दिल्ली , 2 अक्तूबर, 1983

[75] देखिए सर रिचर्ड एटनबरा की फिल्म 'गांधी' एवं 'दांडी यात्रा' तथा स्वतंत्रता संघर्ष की विभिन्न घटनाओं पर बी.बी.सी की डाक्यूमेंट्री फिल्में तथा न्यूज रील ।

[76] बलराज साहनी, मेरी फिल्मी आत्मकथा, दिल्ली, 1974, पृ0 13

भारत में अंग्रेजी राज के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन ने समाज में जो 1930 के आसपास लहरें पैदा कीं, उनमें से एक लहर राष्ट्रीय सिनेमा की थी जिसका संघर्ष न सिर्फ भारतीय सिनेमा में जमे औपनिवेशिक संस्कृति के कूड़ा-करकट के खिलाफ था, बल्कि भारतीय सिनेमा के औपनिवेशिक शोषण से भी था लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन ने जिन सांस्कृतिक लहरों को जन्म दिया था उनमें यह सबसे कमजोर लहर थी । [77]

भारतीय सिनेमा की राष्ट्रीय आंदोलन में कोई भूमिका थी या नहीं, यह जांचने का काम अभी गंभीरता से नहीं हुआ है । अब तक जो तथ्य सामने आए हैं, उससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्रीय सिनेमा की धारा कमजोर भले ही रही हो लेकिन गैर-महत्वपूर्ण कदापि नहीं थी । एक तरफ जहां हमारा राष्ट्रीय नेतृत्व, सिनेमा की शक्ति से प्रायः अनभिज्ञ था और उसे उपेक्षित दृष्टि से देख रहा था वहीं दूसरी तरफ प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान हुए अपने अनुभवों से अंग्रेज संप्रभुओं ने सिनेमा की ताकत को अच्छी तरह से पहचान लिया था । अंग्रेजों ने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सिनेमा का इस्तेमाल अपने पक्ष में 'प्रोपेगैंडा' के रूप में जहां किया था, वहीं रूसी क्रांति के फलस्वरूप 1917 में रूस द्वारा साम्राज्यवादी युद्ध से अलग हो जाने पर सिनेमा को उन्होंने बोल्शेविज्म के खिलाफ प्रचार के लिए भी इस्तेमाल करने का प्रयास किया । [78] शायद सिनेमा के ताकत के अहसास ने ही, युद्ध के अंतिम चरण में यानी 1918 में अंग्रेजों को 'इंडियन सिनेमेट्रो ग्राम एक्ट' पारित करने के लिए बाध्य किया । इसके तहत सार्वजनिक प्रदर्शन से पूर्व हर फिल्म को सेंसर बोर्ड से प्रमाण-पत्र लेना आवश्यक था । [79] यह सेंसर परोक्ष रूप से पूरी तरह राजनीतिक था[80] और किसी भी राजनीतिक आंदोलन, व्यक्ति या घटना का चित्रण अथवा व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाने वाले कथानकों पर बनी सिनेमा की नियति था, प्रतिबंधित होना अर्थात् जब भारत में स्वतंत्रता की लड़ाई जन-आंदोलन की शक्ल अख्तियार कर रही थी, सिनेमा पर सेंसर

---

[77] वीर भारत तलवार, बावन साल पुरानी फिल्म, राष्ट्रीय आंदोलन का एक और पक्ष, आलोचना, नई दिल्ली, जुलाई-सितंबर, 1986, पृ0 52-53

[78] देखिए होम पोलिटिकल, फाइल संख्या 148-159 फरवरी, 1918, 192-203, जुलाई, 1920

[79] देखिए : सिनेमेटो ग्राफ एक्ट ऑफ 1918, होम ए , मई 1918, 595-604

[80] वही

की पाबंदियां लगा दी गई । दूसरे, सिनेमा बेहतर खर्चीला माध्यम है 1 1916 में एक वार फिल्म बनाने के लिए गवर्नमेंट ट्रेजरी से 3000 पौंड की धनराशि व्यय करने की संस्तुति दी गई थी ।[81]

अतः जाहिर है कि उसमें काम करने वाले लोगों के लिए सत्ता से बैर लेना काफी महंगा था । आश्चर्य नहीं कि ऐसे में राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ी फिल्में कम ही बनीं, बावजूद इसके ऐसी ढेरों फिल्में बनीं, जिन्होंने राष्ट्रीय जीवन-भावना एवं द्वंद्व को अभिव्यक्ति दी ।

मूक सिनेमा के दौर में ही भ्रष्ट औपनिवेशिक संस्कृति के प्रभावों के खिलाफ सामाजिक चेतना से लैस फिल्मों की परंपरा शुरू हो गई थी । पाटनकर बंधुओं द्वारा निर्मित फिल्में *शिक्षा* तथा *वासना* एवं *कबीर-कमाल* उल्लेखनीय हैं । जिन्होंने सामाजिक–चेतना का अलख जगाने के प्रयासों से सिनेमा को भी जोड़ा ।[82] भारत में अंग्रेजों ने जिस नए आर्थिक आचार-विचार को जन्म दिया था । उस जमींदारी को पहली बार 1925 में बाबूराव पेंटर ने अभिव्यक्ति दी, *सावकारी पाश* बनाकर ।[83] वी. शांताराम ने इस फिल्म से ही अपने फिल्मी कैरियर की शुरूआत की थी । वे फिल्म में विद्रोही किसान युवक बने थे ।[84]

1931 में आलमआरा के प्रदर्शन के साथ ही भारत में बोलती फिल्मों का युग शुरू हुआ, यह वह समय था जब राष्ट्रीय आंदोलन गोलमेज सम्मेलन के उबारू दौर से गुजर रहा था और जनता बेचैन राष्ट्रीय नेताओं को निहार रही थी । इस समय हिंदी सिनेमा ने जनता की भावनाओं को पर्याप्त अभिव्यक्ति दी । भारत की दूसरी सवाक फिल्म का गौरव प्राप्त जागरण, ब्रिटिश सेंसर का शिकार हो गई । फिल्म का नाम,

---

[81] देखिए : होम पोलिटिकल, ए, मार्च 1916, 671-676

[82] महेंद्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, मेरठ, 1974

[83] देखिए : सावकारी पाश, निर्देशक – बाबूराव पेंटर, 1925

[84] वी.पी.साठे, दि सिनेमा ऑफ व्ही, शांताराम, सं, टी.एम. रामचंद्रन, भारतीय सिनेमा के 70 साल, बंबई, 1984, पृ0 126

उसके कथा का संकेत देता है ।[85] इसी दौरान कांग्रेस के क्रिया –कलापों पर बनी फिल्म कांग्रेस *गर्ल*- जिसे *नेशनल थिएटर* मद्रास ने बनाया था – भी जब्त हुई । घाटा इतना जबरदस्त हुआ कि फिल्म बनाने वाली कंपनी ही बंद हो गई ।[86] तीस और चालीस के दशक में *प्रभात, न्यू थिएटर्स* एवं *बांबे टाकीज* सरीखी फिल्म कंपनियों की फिल्मों ने सामाजिक चेतना से लैस फिल्मों की क्षीणधारा को यदि मुख्यधारा नहीं तो महत्वपूर्ण धारा अवश्य बना दिया । सिनेमा की यह धारा राष्ट्रीय आंदोलन के कारण उपजी विभिन्न सामाजिक – सांस्कृतिक आंदोलनों के उतार-चढ़ाव को रिकार्ड ही नहीं कर रही थी बल्कि उन्हें गति भी दे रही थी । इस धारा का नैरंतर्य हम नितिन बोस, चंदूलाल साह, महबूब खान, बी. एन. रेड्डी, विजय भट्ट , सोहराब मोदी, मास्टर विनायक, गजानन जागीरदार, विमल राय, के. ए. अब्बास और चेतन आनंद की फिल्मों के रूप में 1947 के पहले और आगे तक भी पाते हैं ।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक की ढेरों फिल्मों में जमींदार और किसान, साहूकार और गरीब जन तथा मिल मालिक और मजदूरों के संबंधों का , शोषण के तरीकों का चित्रण हुआ किंतु पूरी तरह ईमानदारी से विषय को चित्रित करने का साहस बहुत कम लोगों ने किया । *बांबे टाकीज* की फिल्म *जन्मभूमि, प्रभात* की फिल्म *वहां यहाँ बियोंड द होराइजन* (उस जमाने में फिल्मों के प्रायः दो नाम हुआ करते थे – एक भारतीय भाषा में तथा दूसरा अंग्रेजी में) जो प्रदर्शित हुई थी, उनमें दासता के विरूद्ध क्रांतिकारी स्वरों को संजीवता के साथ ध्वनित किया गया । देश के युवा वर्ग के हृदयों की कसमसाहट इनमें झलकती है । इसी दौर की एक फिल्म आजादी थी, जिसमें देश के अंदर फैली गुलामी और दासता की मानसिकता को जड़ से उखाड़ फेंकने का अभिप्राय छिपा था ।

1934 में ही श्री एम. भवनानी ने प्रेमचंद की एक कहानी पर *द मिल* या *मजदूर* नाम की फिल्म बनाई । यह फिल्म मिल मजदूर और मिल मालिक के संबंधों का राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में खुलासा करती थी । इस फिल्म को देश के कुछ हिस्सों में बैन कर दिया गया जबकि इलाहाबाद में यह फिल्म 1935 में प्रदर्शित हुई थी । फिल्म

---

[85] महेंद्र मित्तल, वही, पृ0 344

[86] महेंद्र मित्तल, वही, पृ0 344

को बेहद प्रगतिशील और मजदूर विरोधी दोनों ही माना गया । पर निश्चय ही फिल्म विचारोत्तेजक थी तभी तो बलराज साहनी ने जहां इसे उत्कृष्ट फिल्मों को श्रेणी में रखा वहीं *अभ्युदय* ने भी इस पर एक से अधिक लेख छापे । [87]

वी. शांताराम का नाम राष्ट्रवादी फिल्मकारों में अग्रणी है । श्री शांताराम ने हमेशा ज्वलंत सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों को लेकर फिल्में बनाई और भरसक प्रयास किया कि सामाजिक और राजनीतिक चेतना के प्रसार में फिल्में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएं । 1937 में बनी उनकी फिल्म *दुनियाँ न माने* बेमेल विवाह की समस्या को बड़ी शिद्दत के साथ उठाती है । फिल्म को उन्होंने किसी भी रुमानी हल से दूर रखा ।[88] 1939 में उन्होंने *आदमी* बनाई, जिसमें पहली बार वेश्या को एक हाड़-मांस की भावना प्रवण महिला के रूप में चित्रित करते हुए वेश्या पुनर्वास की समस्या को गंभीरता से उठाया गया । 1941 में बनी *पड़ोसी* हिंदू-मुस्लिम एकता और सांप्रदायिक सौहार्द के सवाल की जांच-पड़ताल करती है और दिखाती है कि संकीर्ण सियासत ही भाई-भाई के बीच वैमनस्य पैदा करती हैं। उनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय फिल्म *डा. कोटनीस की अमर कहानी* (1946) है। यह फिल्म एक प्रतिबद्ध कलाकार की कूटनीतिक समझदारी का बेहतरीन नमूना है । ब्रिटिश सरकार ने भारतीय फिल्मकारों से युद्धकाल में अपने पक्ष में प्रचार हेतु मदद चाही । शांताराम ने कांग्रेस द्वारा डाक्टरों का एक मिशन चीन भेजने की समकालीन घटना को पहली बार सिनेमा का विषय बनाया । फिल्म में फासिस्ट जापान के खिलाफ चीनी राष्ट्रवादियों को दिखाया था, इसलिए बिट्रिश सरकार ने इसे सहर्ष पास कर दिया । पं. मोतीलाल नेहरू ने इस मिशन को प्रायोजित किया था, अतः कांग्रेस प्रसन्न हुई । फिल्म में माओ की लाल सेना को दिलेरी से लड़ते हुए दिखाया गया था । इसलिए भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने भी इसे सराहा । फिल्म के माध्यम से शांताराम ने यह स्पष्ट कर दिया कि जो राष्ट्र दूसरे देशों की राष्ट्रीयताओं का हर स्तर पर समर्थन कर रहा है, वह स्वयं कितना प्रतिबद्ध है अपनी आजादी की लड़ाई के प्रति । इससे पहले उन्होंने जब *महात्मा* शीर्षक से महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत एकनाथ के जीवन पर फिल्म बनाई तो

[87] देखिए बलराज साहनी, मेरी फिल्मी आत्मकथा, दिल्ली, 1974 एवं अभ्युदय के अंकों में सिनेमा संसार के अंतर्गत लेख ।

[88] देखिए, दुनियाँ न माने या 'The unexpected' Producer, Prabhat; Film Director, V. Shantaram, 1937

ब्रिटिश सेंसर ने इसका नाम बदलने के लिये शांताराम को बाध्य किया क्योंकि फिल्म के केन्द्रीय पात्र की कार्यविधि और कार्यक्रम गांधी से मिलते-जुलते प्रतीत हुए थे । फिल्म अंततः *धर्मात्मा* नाम से (1930-31) में प्रदर्शित हुई ।

चौरी-चौरा कांड के फलस्वरूप असहयोग आंदोलन वापस लेने पर सारे देश में गांधी की तीव्र आलोचना हुई । उनकी समझौता परस्त नीतियों से देश के बुद्धिजीवियों का एक वर्ग उनका तीव्र आलोचक बन गया । ऐसे बुद्धिजीवी सिनेमा में भी कार्यरत थे तथा पी. के. अत्रे एवं मास्टर विनायक ऐसे ही लोगों में प्रमुख थे। इन दोनों ने अपनी फिल्में *ब्रह्मचारी, विस्की की बोतल* और *धर्मवीर* के माध्यम से गांधी की कार्य-विधि एवं कार्यक्रमों की तीव्र आलोचना की ।

इस सदी के चौथे दशक में ही सोहराब मोदी ने भारतीय ऐतिहासिक चरित्रों जहांगीर और पोरस के जीवन की घटनाओं पर क्रमशः *पुकार* (1939) और *सिकंदर* (1941) फिल्में बनाई । इन फिल्मों ने राष्ट्रवादी भावनाओं को जनमानस में घनीभूत किया । 1939 में तमिल भाषा में के. सुब्रमणियम ने एक फिल्म बनाई *त्यागभूमि* । यह फिल्म एक मशहूर मुकदमे पर आधारित थी, जिसका मुद्दा यह था कि क्या कोई विवाहित भारतीय स्त्री अपने पति से अलग रह सकती है ? मुकदमे का निर्णय महिला के विरूद्ध होता है, किन्तु ऐसी सूरत में वह अवांछित पति के साथ रहने की अपेक्षा, कांग्रेस आंदोलन में सक्रिय होकर जेल जाना पसंद करती है । फिल्म में बच्चों के विद्यालयों में गांधी का जन्मदिन सार्वजनिक रूप से मनाए जाने का दृश्य है, पूरी फिल्म पर कांग्रेस का प्रभाव झलकता है ।

चालीस के दशक में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी काफी प्रभावशाली हो चली थी । बुद्धिजीवियों को तो इसने बहुत ही ज्यादा प्रभावित किया । 1936 में पी. डब्लू. ए. और *इप्टा* के गठन ने सिनेमा को भी गंभीर रूप से प्रभावित किया । 1930-40 में वामपंथी सोच से जुड़े लेखक-पत्रकार-फिल्मकार सामने आए । सर्वहारा की विजय और पूंजीवाद की अनिवार्य पराजय का सिद्धांत सिनेमा के पर्दे पर भी दिखाई देने लगा । 1942 में महबूब खान ने रोटी बनाई । जिसमें श्रम पर केंद्रित समाज का एक चित्र प्रस्तुत किया गया था और पूंजी पर केंद्रित समाज का निस्सारता को भी रेखांकित किया गया था । 1943 में ज्ञान मुखर्जी की किस्मत प्रदर्शित हुई, जिसमें *दूर हटो ए दुनिया वालों हिंदुस्तान हमारा है...* गाना था । युद्धकाल में ब्रिटिश सरकार ने इसे

अपने पक्ष में माना किंतु वास्तव में दूर हटो ए दुनियां वालो कहकर राष्ट्रवादियों ने ब्रिटेन को भी चेतावली दी थी । विमलराय की *हमराही* (1945) इस दौर की सर्वाधिक प्रगतिशील फिल्म थी । इसमें साधन संपन्न और सर्वहारा, पूंजीपति और मजदूर, समाजवाद और पूंजीवाद के बीच की समस्याओं का एक बौद्धिक हल देने का प्रयास किया गया था । रवींद्रनाथ टैगोर का गीत *जन-गण-मन अधिनायक* ... इस फिल्म में पहली बार इस्तेमाल किया गया था, जो 1947 में स्वतंत्रता के पश्चात् भारत का राष्ट्रगान बना । 1946 में इप्टा के बैनर तले ख्वाजा अहमद अब्बास ने *धरती के लाल* और चेतन आनंद ने *नीचा नगर* बनाई । ये दोनों ही फिल्में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हुईं । *धरती के लाल* ने बंगाल के भीषण अकाल को पृष्ठभूमि में रखकर, उससे उत्पन्न परिस्थितियों में मानवीय मूल्यों के अध:पतन और इसके लिए जिम्मेदार व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया ।

स्वतंत्रता के बाद नेहरू के समाजवादी रूझान ने भारतीयता की इस धारा को बनाए रखा । बावजूद इसके कि बॉक्स आफिस का उदय दूसरे विश्वयुद्ध के बाद सिने उद्योग में आए काले धन के कारण हो चुका था । नेहरू के समाजवाद और पूंजीवाद के आदर्श मेल का सपना ज्यों-ज्यों टूटा, त्यों-त्यों भारतीय जनमानस में मोहभंग का दौर शुरू हुआ, जो नेहरू की मौत के साथ तेजी से सामने आया । समाज के हर क्षेत्र में पतन हुआ । मानवीय और नैतिक मूल्य ढहने लगे । इस पतन और द्वंद्व को समझने के लिए राजकपूर सबसे उचित उदाहरण हैं जो अपनी वामपंथी रूझान वाली फिल्मों *आवारा, श्री 420, जागते रहो, बूट पालिश* आदि के कारण रूस में नेहरू के बाद के सबसे चर्चित भारतीय हैं ।

हिंदी पत्रकारिता और स्वाधीनता संग्राम

• एम॰ बी॰ शाह

हिंदी पत्रकारिता की भारत के स्वाधीनता संग्राम में अहम् भूमिका थी । उस संग्राम को दर्शन और दिशा देने का काम मुख्यत: पत्रकारिता ने ही किया । तब वह व्यवसाय नहीं था, वृत्ति थी । इसलिए हर प्रकार की कीमत चुकाकर पत्रकारों ने आजादी की लड़ाई जारी रखी । पत्रकार फांसी पर चढ़े, काले पानी की सज़ा भुगती, जेल गये, कोडे खाए, कुर्की सही । पता नहीं क्या-क्या सहा ? तब पत्रकारिता प्रखर देशभक्ति का दूसरा नाम था । पत्र और पत्रकारों के लिए तब एक ही दुश्मन था – अंग्रेज । एक ही देश था – हिंदुस्तान । एक ही लक्ष्य था – आजादी और एक ही नेता था – पहले तिलक, बाद में गांधी ।

डेढ़ सौ सालों तक गुलामी में सड़ने वाले इस देश के दिल और दिमाग को सही राह पत्रकारिता ने बताई । उसने यहां की जनता का राजनीतिक संस्कार किया । वर्षों से जड़ जमाकर बैठी हुई सामाजिक बुराईयों को निकाल बाहर करने की कोशिश की । समाज सुधार की कई नई राहें निकाली । पत्रकारिता नेतृत्व भी कर रही थी और सलाह भी दे रही थी । जातिभेद, धर्मभेद, प्रांतभेद या भाषाभेद तब कोई नहीं रखते थे। लोग हर कीमत पर आजादी की जंग लड़ना चाहते थे । हर प्रांत से प्रांतीय भाषाओं में जो भी दो –चार पन्नों का समाचार पत्र निकलता वह ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देने से बाज नहीं आता । संघर्ष में पनपती यह नैतिकता और हिम्मत गांधी जैसे नेता की देन थी । नैतिक साहस का पूरे समाज में फैलता यह दौर भी गांधी जी जैसे एक पत्रकार के कारण ही था । स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास एक दृष्टि से पत्रकारिता का ही इतिहास है । स्वतंत्रता मिली अवश्य पर स्वाधीनता मिली ऐसा नहीं कहा जा सकता।

हिंदी पत्रकारिता और स्वाधीनता आंदोलन

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी पत्रकारिता की अहम् भूमिका थी । स्वतंत्रता आंदोलन की अपनी कुछ विशेषताएं थी । पहली बार सारा देश एक दुश्मन के

खिलाफ खड़ा हुआ जो इसके पहले के इतिहास में कभी नहीं हुआ था । दूसरे, संघर्ष के और लड़ाई के जो हथियार उसके पास थे - *सत्याग्रह - असहयोग - अहिंसा* - वह इसके पहले के राजनीतिक इतिहास में न कभी किसी ने प्रयुक्त किये थे, न ही उसके बारे में कभी सोचा तक था । तीसरे, इस बार स्वतंत्रता के संघर्ष में बच्चे, बूढे, औरतें, किसान, मजदूर से लेकर मध्यवर्ग और बुद्धिजीवी तक मैदान में उतरे थे, जो इसके पहले के इतिहास में कभी नहीं हुआ था । चौथे, स्वतंतत्रता के साथ -साथ समाज में होने वाली सभी प्रकार की दकियानूसी के खिलाफ एक चौतरफा जंग जारी थी और इस जंग के साथ-साथ रचनात्मक कार्यों की एक लम्बी फेहरिस्त गांधी जी द्वारा जारी की गई थी, जिस पर हजारों कार्यकर्ता अमल कर रहे थे। संघर्ष और रचना का ऐसा दौर भी देश के इतिहास के लिए अनोखी बात थी । हिंदी पत्रकारिता इस संदर्भ तीन भूमिकाएं निभा रही थी । एक आजादी की जंग, *दो समाज* में सुधार में, तीन, साहित्य का परिष्कार और इन तीनों स्थानों पर उसने जो काम किया उसे इतिहास कभी भूल नहीं सकेगा ।

आजादी की जंग

सही मायने में इस देश में आजादी की जंग का पहला ऐलान पत्रकारिता ने ही किया । 8 फरवरी 1857को दिल्ली से अजीमुल्ला खां ने हिंदी और उर्दू में एक छोटा समाचार पत्र निकाला -*पयामे आजादी* । उसमें उस समय के राष्ट्रगीत की प्रथम पंक्तियां छपी थी,

"हम है इसके मालिक, हिंदुस्तान हमारा,
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा ।"

पयामे आजादी की सारी प्रतियां जब्त कर जलायी गयी । कहा जाता है कि इसकी एक प्रति बची जो लंदन में उपलब्ध है ।

8 अप्रैल 1857 को मंगल पांडे को फांसी दी गयी, जिसकी तीव्र प्रतिक्रिया देश में हुई। *पयामे आजादी* के बाद लगभग *एक दशक* तक पत्रकारिता में सन्नाटा रहा और फिर एक दौर शुरू हुआ, भारतेंदु हरिश्चंद्र के कवि *वचन सुधा* से । *कवि वचन सुधा* का उद्देश्य था "सत्य निज भारत गहे " । तब के अधिकांश पत्रों की शीर्षस्थ पंक्तियां देश और देशहित को प्राधान्य देनेवाली थी । रीतिकाल की समाप्ति तक काव्य

ग्रंथों का प्रारंभ ईश्वर तथा सरस्वती वंदना से होता था । आधुनिक काल में वह देश वंदना से होने लगा । सही मायने में स्वदेशी आंदोलन शुरू करने का श्रेय *कवि वचन सुधा* को जाना चाहिए ।

पत्रकारिता स्वान्तः सुखाय नहीं, जनहिताय होती थी । युगल किशोर शुक्ल का *उदन्त मार्तंड,* नीलरतन हलदार का *बंगदूत,* शिवप्रसाद सितारे हिंद का *बनारस अख़बार,* जैसे पत्र समाचारों को जितनी प्रधानता देते थे, उससे अधिक प्रधानता हिंदुस्थानियों के हित के हेतु को देते थे । प्रथम, *दैनिक सुधावर्षण* ने अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध करने का बहादुर जाह जफर का *फरमान* छापकर विदेशी सत्ता को खुली चुनौती दी थी ।

राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के पूर्ववर्ती वर्षों में और स्वतंत्रता के बाद के 20-25 वर्षों तक पत्रकारिता और हिंदी साहित्य के केंद्र में भी "स्वतंत्रता" ही विषय था । इस स्वतंत्रता के लिए पत्रकारिता ने जो कीमत चुकायी है उसका अंदाजा आसानी से नहीं लगाया जा सकता । 1900 से 1920 तक तिलक महाराज का और 1920 के बाद स्वतंत्रता प्राप्ति तक इस क्षेत्र पर महात्मा गांधी का जबरदस्त अधिकार था । अग्निपथीय पत्रकारिता का एक दीर्घ दौर इस काल में चला । *युगांतर, गदर, वंदे मातरम, संध्या, स्वराज्य, कर्मयोगी, प्रताप वीर अर्जुन, तेज, मिलाप, कर्मवीर, भारत मित्र* इत्यादि केवल नाम नहीं थे, ये देशप्रेम में धधकते अग्नि कुंड थे । *युगांतर* के कई संपादकों ने जेल भुगती । उसका मूल्य था "फिरंगेर कांचा माथा" । *गदर* के संपादकों में में लाला हरदयाल और सरदार करतार सिंह थे जिन्हें अपने छः साथियों सहित फांसी की सज़ा हुई थी । विपिन चंद्र पाल और हलदर के *वंदे मातरम्* ने न केवल बंगाल में बल्कि पूरे उत्तरी भारत में खलबली मचाई थी । 1907 में इलाहाबाद से प्रकाशित *स्वराज्य* ने तो पत्रकारिता और स्वतंत्रता के इतिहास में पत्रकारिता के साहस और शूरता की एक अद्भुत मिसाल कायम की । शांति नारायण भटनागर के संपादकत्व में निकलने वाले इस पत्र के आठ संपादकों को कुल मिलाकर 125 वर्ष काला पानी की सज़ा हुई थी । *स्वराज्य* को फिर भी संपादक मिलते गये । हर संपादक की सज़ा के बाद, *स्वराज्य* में इश्तेहार निकलता-"संपादक चाहिये, वेतन-दो सूखी रोटी, एक गिलास ठंडा पानी और हर संपादकीय के लिए 20 साल की जेल " । स्वराज को तब भी संपादकों की कमी नहीं पड़ी । राजा राममोहन रॉय, बाबू अरविंद

घोष, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी से लेकर युगल किशोर शुक्ल, दुर्गा प्रसाद मिश्र, बाल कृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, अमृत लाल चक्रवर्ती, पराडकर, विद्यार्थी, बाजपेयी, गर्दे से लेकर एक दीर्घ नामावली है, जो जान हथेली पर लेकर लड़ रहे थे। गणेशशंकर विद्यार्थी की हत्या, पं0 रूद्रदत्त शर्मा का भूखों मरना, पं0 अमृत लाल चक्रवर्ती का कर्जा न चुका पाने के कारण जेल जाना, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर के पेपर पर लगभग 80 बार कुर्की हुई, ये और इन जैसी कई अस्मानी सुल्तानी संकटों से जूझती हुई पत्रकारिता, अंत में स्वतंत्रता के मुकाम तक पहुंच ही गई थी। इनमे *कर्मवीर* जैसे कई पत्र थे जिन पर अन्य प्रदेशों में पाबंदी थी फिर भी ये पत्र चोरी-छिपे उन प्रदेशों में पहुंच ही जाते थे।

राष्ट्रवाद का व्यापक स्वरूप

स्वतंत्रता की इस लड़ाई में हिंदू-मुसलमान साथ-साथ थे। हिंदी के साथ उर्दू के *मालवा अख़बार, जमाना, आजाद, स्वराज्य, पेशवा, हिंदुस्तान, आकाश, गदर, परिवर्तन, सुबह-ए-वतन* जैसी कितनी ही उर्दू पत्रिकाएं सरकार पर जमकर हमले बोलती थीं।

राष्ट्र की जनता की ऐसी एकता, बाद की पत्रकारिता ने शायद ही कभी अनुभूत किया हो। लोगों में 'मैं भारतीय हूं' इस बात के प्रति अभिमान था। माखन लाल चतुर्वेदी जैसा स्वनामधन्य पत्रकार *"एक भारतीय आत्मा"* के नाम से लिखता था। इस सदी का एक महत्वपूर्ण दर्शन यह था कि राष्ट्रवाद और जनतंत्र एक ही सिक्के के दो पहलू थे। राष्ट्रवाद के कारण किसी प्रकार की संकुचितता के लिए जगह नहीं थी। इसलिए उस काल के हिंदू लेखकों की कृतियों में मुस्लिम जीवन और मुस्लिम पात्रों की बिल्कुल सही और जीती-जागती तस्वीर मिलती थी। स्वतंत्रता के बाद ये अच्छे मुस्लिम पात्र पता नहीं कहां गायब हो गये ?

गणेश शंकर विद्यार्थी ने 1915 में *प्रताप* में एक लेख लिखा – 'राष्ट्रीयता' उसमें स्पष्टतः यह विधान है कि राष्ट्रीयता धार्मिक सिद्धांतों का दायरा नहीं।

स्वराज किसके लिए ?

सबसे बड़ी बात यह थी कि पत्रकारिता के नेता यह ठीक-ठीक जानते थे कि हम जिसे स्वराज कहते हैं, वह अंततः है किसके लिए ? तिलक, गांधी, माखनलाल

और गणेश शंकर विद्यार्थी हो या प्रेमचंद, निराला जैसे साहित्यिक हों यह बिल्कुल ठीक जानते थे की स्वराज्य में "स्व" का मतलब है, मजदूर, किसान, मेहनतकश वर्ग। 1908 में राधामोहन गोकुल का 'देश का धन', महावीर प्रसाद का 'संपत्तिशास्त्र', 1918 में *सरस्वती* में गंगाधर पंत का लेख "अवध के जमींदार और काश्तकार", 1907 में *सरस्वती* में ही माधवराव सप्रे का लेख "हड़ताल", जनार्दन भट्ट का "हमारे गरीब किसान और मजदूर" , इन सभी में देश के किसान वर्ग की चिंता और जमींदारों पर कड़े हमले है । हिंदी पत्रकारिता तब बड़े से बड़े सत्ता स्थानों से नहीं डरती थी । यह बात एक अलग चर्चा का विषय है कि सन् 1960 के बाद धन्ना सेठों ने उसे कैसे लील लिया ?

सामाजिक सुधार की दिशाएं

भारतेंदु स्वभाव से कर्मठ धार्मिक थे । वे देश के पतन का मुख्य कारण नास्तिकता मानते थे । एक दृष्टि से कर्मकांड में उनका विश्वास था, पर सामाजिक कुरीतियों पर उन्होंने करारे हमले किए । पं० बालकृष्ण भट्ट ने हिंदू धर्म की पाखडता पर कड़ी टीका टिप्पणी की। भट्ट जी के काल तक, "राष्ट्रीयता" शब्द अपरिचित था, सच्चे अर्थ में वे इस शब्द के जनक हैं । पं० प्रताप नारायण मिश्र ने बाल विवाह और अनमेल विवाह पर, बाबू बालमुकुंद गुप्त ने मारवाड़ी समाज की अ-सामाजिकता पर, गांधी जी ने अस्पृश्यता पर, गणेश शंकर विद्यार्थी ने जाति भेद पर बड़े करारे हमले किए । पत्रकारिता एक और ब्रिटिश सत्ता के साथ लड़ रही थी तो दूसरी ओर अपने ही समाज में विभिन्न कारणों से पनपने वाली दकियानूसी के खिलाफ भी संघर्ष कर रही थी ।

पत्रकारिता की और एक विशेषता इस संदर्भ में ध्यान में रखनी होगी । आज समाचार पत्र "ग्राहक" खोजते हैं । तब वे "पाठक" को तैयार करते थे । जनता के सामाजिक और राजनीतिक प्रबोधन का जो काम उस समय पत्रकारिता ने किया वह बेजोड़ था । लोग दूरदराज के देहातों तक तिलक जी के *केसरी* की और गांधी जी के *हरिजन* की राह देखा करते। तब पत्रकारिता एक व्रत थी, वृत्ति नहीं । उसका व्यावसायीकरण नहीं हुआ था । पत्रकारिता का सर्वाधिक तेजस्वी रूप स्वतंत्रता संग्राम में ही प्रगट हुआ ।

1920 से शुरू होने वाले गांधी युग ने पत्रकारिता की एक नई राह बनाई । गांधी जी यह मानते थे कि समाचार पत्र का पहला उद्देश्य है जनता के विचारों को समझना तथा व्यक्त करना, दूसरा उद्देश्य है, जनता में वांछनीय भावनाओं को जागृत करना तथा तीसरा उद्देश्य है, सार्वजनिक दोषों को निर्भयतापूर्वक प्रकट करना । खुद गांधी जी ये तीनों उद्देश्य ध्यान में रखकर पत्रकारिता करते थे । बगैर किसी प्रकार की आक्रामक, धाकड़ और भड़काऊ भाषा का उपयोग किये, विरोधियों के जाल को कैसे तोड़ा जाए, इसका नमूना गांधी जी की पत्रकारिता थी । 1826 से 1857 तक और 1857 से 1947 तक जितने समाचार पत्र निकले, सभी राष्ट्रीय संघर्ष में अग्रसर थे ऐसा नहीं कहा जा सकेगा पर जिन्होंने यह भूमिका स्वतंत्रता प्राप्ति तक ईमानदारी से निभाई ऐसे पत्र भी कम नहीं थे । *इंडियन ओपिनियन, सत्याग्रही, यंग इंडिया, नव जीवन* तथा *हरिजन* ने जिस सत्यवादी पत्रकारिता की नींव रखी उसका एक सर्वाधिक प्रभाव जरूर था । पत्रकारिता की भी एक जबरदस्त अहिंसक ताकत हो सकती है, उसका प्रमाण इस सत्यवादी पत्रकारिता ने दिया । कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, *विकास* जैसा 5-8 पृष्ठों का साप्ताहिक चलाते थे, पर उनकी सत्यवादिता और निर्भयता की दाद देश के बड़े से बड़े नेता भी देते थे ।

उस समय के पत्रकारिता की यह विशेषता थी कि पत्रकार देश के दुर्भाग्य को अपना दुर्भाग्य मानते थे । उनकी साधना का लक्ष्य था । साम्राज्यशाही अभिशाप से मुक्ति । तब के पत्रकार और पत्रकारिता को भी यह गुमान था कि पत्रकार की भूमिका लोकनायक की भूमिका है । आजादी के बाद यह परिदृश्य बदला । यह वह समय था जब पराडकर जी , लोकनायक जयप्रकाश जी को और निराला पं0 नेहरू को फटकारते थे । पत्रकारों में ऐसी निर्भिकता अब दुर्लभ है । आज समाज जैसे पत्रकारिता के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रहा है वैसे तत्कालीन पत्रकारिता के साथ नहीं था । उस समाज की राजनीति का संस्कार अविकसित था। स्वतंत्रता आंदोलन की पत्रकारिता ने तत्कालीन समाज में यह संस्कार विकसित किया था ।

स्वाधीनता और स्वतंत्रता

वस्तुतः स्वाधीनता और स्वतंत्रता दो अलग-अलग संकल्पनाएं हैं । 1947 में हमारा स्वतंत्रता संग्राम पूरा हुआ । देश को आजादी मिली । 150 सालों की गुलामी की ज़ंजीरें टूट गयी, पर देश किसी भी अर्थ में आज स्वाधीन नहीं है । स्वाधीनता में,

हम किसी भी बात के लिए दूसरे पर निर्भर नहीं रहते । "स्व" का विस्तार इतना होता है कि वह एक ओर व्यक्ति के साथ तो दूसरी ओर विश्व के साथ अपने आपको जोड़ता है । इस व्यापक "स्व" के साथ अधिकांश लोगों का कोई वास्ता नहीं दिखाई देता । लोग न राष्ट्र के साथ जुड़ते हैं न व्यापक "स्व" के साथ । गांधी जी के स्वराज की संकल्पना से हम लोग और हमारी पत्रकारिता कोसों दूर है । 1924 में *प्रताप* में विद्यार्थी जी ने लिखा "देश में जो स्वराज्य होगा वह किसी छोटे-छोटे समुदाय का नहीं, धनवान और शिक्षिकों का नहीं, वह होगा साधारण से साधारण आदमी तक का ।"

"स्वराज" का यह सपना इस सामान्य आदमी के लिए आज भी गूलर का फूल है ।

महाकौशल में राष्ट्रीय आंदोलन तथा हिंदी पत्रकारिता
(1920 से 1942 तक)

• डा. राजीव दुबे

हिंदी पत्रकारिता का इतिहास भारत की राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जागृति एवं नवचेतना का प्रेरणाप्रद इतिहास है । देश की स्वतंत्रता की लड़ाई के अनुरूप ही हिंदी पत्रकारिता का इतिहास है । गांधी युग के पूर्व की हिंदी पत्रकारिता का मूल स्वर राजनीतिक कम और साहित्यिक अधिक था । परन्तु बढ़ती हुई राजनीतिक परिस्थितियों ने हिंदी पत्रकारिता को एक नया स्वर दिया । फलस्वरूप इस युग की हिंदी पत्रकारिता में नये जीवन मूल्यों और आदर्शों की स्थापना हुई, जिस पर गांधीजी के विचार, संकल्पों और उस युग की राजनीतिक परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । गांधी युग के प्रारम्भ में व्यापक राष्ट्रीय संवेदना और शाश्वत मूल्यों को विद्रोह के स्तर पर समन्वित करने में महाकौशल की हिंदी पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

महाकौशल के समाचार-पत्रों ने राजनीति एवं राष्ट्र प्रेम संबंधी समाचारों को प्रमुखता दी । कांग्रेस समर्थक समाचार-पत्रों ने गांधीजी द्वारा वायसराय को प्रेषित पत्रों को प्रकाशित किया एवं उन पर टिप्पणियां लिखीं । उन्होंने उसे स्पष्ट एवं निर्भीक प्रमाणित किया एवं लिखा कि ये ब्रिटिश शासन के प्रभावों का सप्रमाण सही चित्रण करते हैं । उन पत्रों ने असहयोग आंदोलन का स्वागत करते हुए लिखा कि यह योजना प्रभावशाली एवं फलदायी होगी ।

आंदोलन की अवधि में समाचार पत्रों की संख्या मध्यप्रांत में 1920 में 24 की तुलना में 1922 में 194 हो गई । यह संख्या आंदोलन की अवधि में समाचार पत्रों की उपयोगिता प्रमाणित करती है । पत्र – पत्रिकाएं लोगों को आंदोलन संबंधी समाचार तो देते ही थे साथ ही नेताओं के विचारों को भी सामने रखते थे । जब नेतागण गिरफ्तार हो जाते थे तो उस समय लोगों के लिए आंदोलन की गतिविधियां जानने का एकमात्र साधन समाचार पत्र ही थे ।

सरकार द्वारा अनेक प्रतिबंध लगाये जाने पर भी 1920 से 1924 तक के वर्षों में बुलेटिन एवं पैम्फलेटों की बाढ़ सी आ गई । विभिन्न प्रांतों से प्रकाशित पैम्फलेट भी लोगों में वितरित किये जाते थे । ऐसा लगता है कि सरकार भयभीत थी । मध्यप्रान्त शासन ने अनेक पैम्फलेट एवं प्रकाशनों पर प्रतिबंध लगा दिया । प्रतिबन्धित पैम्फलेटों की संख्या इस प्रकार थी -

1920	1921	1922	1923	1924
24	106	194	163	51

मध्यप्रान्त में *कर्मवीर* हिंदी भाषियों के विचारों का प्रचार करता था । जबकि *'हितवाद' मराठी* भाषी लोगों का कट्टर समर्थक था । दोनों पत्रों ने 'कांग्रेस अधिवेशन नागपुर में हो या जबलपुर में' विषय पर संपादकीय टिप्पणियां लिखीं । किन्तु *कर्मवीर* ने नरम तथा गरम दलों की समानता तथा सामंजस्य लाने के लिये उल्लेखनीय भूमिका अदा की ।

असहयोग आंदोलन के समर्थन करने वाले समाचार पत्रों तथा कांग्रेस कार्यालय से निकले अखबारों के संबंध में सरकारी रिपोर्ट में उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है, 'इस केन्द्रीय सचिवालय से राष्ट्रीय शक्ति के संगठन एवं सत्याग्रह कार्य का नियोजित ढंग से क्रियान्वयन साल भर किया जा सकेगा । कांग्रेस कार्यालय से एक अख़बार का प्रकाशन किया जाये जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आदेश एवं अपील को रिकार्ड करे एवं घोषित करें ।

गांधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन को गति देने में अनेक समाचार पत्र सामने आये । 1924 तक इस प्रांत में प्रकाशित समाचार पत्रों की वार्षिक संख्या 66 हो गई जिसमें महाकौशल से प्रकाशित पत्र 34 थे ।

नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में पहली बार समस्त प्रतिनिधियों ने स्वदेशी वस्त्र पहनकर आने का निश्चय किया और उनमें से अनेक ने सिर पर गांधी टोपी लगाई जो उस समय से राष्ट्रीय बिल्ले के रूप में स्वीकार कर ली गई । गांधी टोपी पहनकर न्यायालयों में प्रवेश करने का आग्रह किया गया और इस प्रकार उन्होंने स्वयं

को शासकीय पदाधिकारियों का कोपभाजन बनाया । सरकारी रिपोर्ट में भी इसका जिक्र किया गया था, 'स्वदेशी आंदोलन अब अधिक गति पर था । चरखों का प्रचार तीव्र गति से हो रहा था । इसके साथ ही साथ अब गांधी टोपी का भी प्रचलन हो गया था । पर इनका प्रयोग शासकीय सेवकों द्वारा किया जाना नापसंद था ।' ऐसा करना असहयोग आंदोलन के साथ सहानुभूति दिखाना था । शासन की दृष्टि में टोपी असहयोग आंदोलन का ही हिस्सा थी ।

12 जून, 1921 को बिलासपुर में पं0 माखनलाल चतुर्वेदी अपनी निर्भीक पत्रकारिता के कारण ब्रितानी हुकूमत के शिकार बने और गिरफ्तार कर लिये गये । माखनलाल की गिरफ्तारी एक ओर अंग्रेज सरकार की अखबारों और पत्रकारों की दमन नीति की एक अभिव्यक्ति थी तो दूसरी ओर जनता तक सच्ची और ठीक परिस्थितियों की जानाकारी को पहुंचाये जाने में बाधक थी । तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता स्वराज्य की आकांक्षा और राष्ट्रीयता की भावना के प्रति प्रतिबद्ध थी, जिसके प्रतीक के रूप में माखनलालजी और साप्ताहिक *कर्मवीर* स्वीकार किये गये थे । सरकार चाहती कुछ और थी परन्तु परिणाम कुछ और ही निकला । चतुर्वेदी जी की गिरफ्तारी से *'कर्मवीर'* को और अधिक स्फूर्ति मिली ।

18 मार्च 1923 को गांधी दिवस पर, *जबलपुर नगरपालिका भवन* पर राष्ट्रीय झंडा फहराया गया जो संभवत: देश में पहली बार किसी सार्वजनिक भवन पर राष्ट्रीय झंडारोहण था । वस्तुत: यह सर्वप्रथम जबलपुर में प्रारम्भ हुआ जबकि नगरपालिका के कांग्रेस सदस्यों ने नगर पालिका भवन पर राष्ट्रीय झंडा फहराने का निर्णय किया । यूरोपियन डिप्टी कमिश्नर ने अत्यंत क्रुद्ध होकर झंडे को उतारने का आदेश दिया और उत्साह के अतिरेक में पुलिस ने उसे न केवल उतारा ही, अपितु उसे पैरों तले कुचला भी । जिसमें तत्काल ही रोषयुक्त आंदोलन फूट पडा । जिला कांग्रेस समिति ने सत्याग्रह प्रारम्भ किया और डिप्टी कमिश्नर के आदेशों का उल्लंघन करते हुए स्वयं सेवकों ने एक जुलूस निकाला । जुलूस पुलिस द्वारा रोक दिया गया और पं0 सुन्दर लाल, सुभद्रा कुमारी चौहान, नाथूराम मोदी समेत अनेक नेता बंदी हो गये । पं0 सुन्दर लाल पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें 6 मास के लिए दण्डित किया गया । जबलपुर के जिला अधिकारियों की अत्याचारपूर्ण कार्रवाई ने सम्पूर्ण प्रान्त में जनता को उत्तेजित कर दिया और नागपुर कांग्रेस समिति ने यह चुनौती स्वीकार की ।

जमनालाल बजाज ने आंदोलन के संगठन का कार्य अपने हाथ में ले लिया। मध्यप्रान्त के तत्कालीन समाचार-पत्रों ने जबलपुर नगर पालिका के साहस की प्रशंसा करते हुए उन्हें बधाई दी। अगस्त माह के पूर्वाद्ध में छत्तीसगढ़ की दो नगरपालिकाओं में सुंदरलाल के आगमन पर अपने भवनों पर राष्ट्रीय झंडा फहराया एवं कुछ ने सत्याग्रहियों के जेल से छूटने पर उन्हें मान-पत्र दिये एवं अपने भवनों पर राष्ट्रीय झंडा फहराया।

समाचार पत्रों का महत्व प्रत्येक के लिए था। वे न केवल महाकौशल बल्कि संपूर्ण भारत की स्वतंत्रता का शंखनाद कर रहे थे। स्वराज्य पार्टी ने अपने प्रचार-प्रसार के लिए समाचार पत्रों को माध्यम बनाया है। मध्यप्रान्त के लिए दिल्ली एवं बम्बई दोनों स्थान समान महत्व के थे। *बोम्बे क्रानिकल* को स्वराज्य पार्टी द्वारा पचास हजार की राशि दी गई थी जिससे कि वह उक्त विचारधारा का हिंदुस्तान में प्रचार-प्रसार करें। पत्र के संपादक पाणिक्कर एवं सहायक संपादक आसिफ अली नियुक्त किये गये।

समाचार पत्रों ने प्रान्त में जनभावनाओं को उभारा। उन्होंने सरकारी दबाव के बावजूद लोगों में कांग्रेस को एक मात्र जनसंस्था एवं स्वतंत्रता के अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित किया। चुनाव में कांग्रेस को विजयी बनाने में संभवतः इनका ही सर्वाधिक योगदान रहा है। अनेक पत्रों को इसका प्रतिफल भुगतना पड़ा। इस अवधि में प्रकाशित पत्रों का आदर्श कांग्रेसी विचारधारा को प्रकाशित करना था।

26 जनवरी 1930 को स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। इस अवसर पर जबलपुर, नागुपर तथा अन्य स्थानों में राष्ट्रीय झंडे को सलामी दी गई। नमक सत्याग्रह प्रारम्भ होने के पहले से ही मध्य प्रान्त के प्रत्येक जिले में कांग्रेस का प्रचार कार्य जिले के भीतरी भागों तक पहुंच गया था। इसी समय गोविन्ददास ने *'लोकमत'* नामक समाचार पत्र निकालना प्रारम्भ किया, जिसके संपादक द्वारिका प्रसाद मिश्र थे। उनके कुशल संपादकत्व में इस समाचार पत्र ने शीध्र ही उन्नति की तथा यह हिंदी का सर्वोतम पत्र माना जाने लगा। इसकी ग्राहक संख्या ग्यारह हजार तक पहुंच गयी। इसका कार्यालय गोविन्द दास के गोपाल बाग़ नामक मकान में था।

जबलपुर से प्रकाशित होने वाला साप्ताहिक *कर्मवीर*, 1925 में खंडवा से प्रकाशित होने लगा । सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान इस साप्ताहिक समाचार-पत्र ने पूर्वी निमाड़ में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में उल्लेखनीय योगदान दिया । *कर्मवीर* ने सेन्ट्रल इंडिया की रियासतों तथा मध्य प्रान्त में स्वतंत्रता संग्राम का महत्व इतना अधिक प्रतिपादित किया कि संकट तथा संघर्ष के उन वर्षों के दौरान जनता उसे राजनैतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक पत्र से कहीं अधिक एक संस्था के रूप में महत्व देने लगी । सेन्ट्रल इंडिया की अधिकांश रियासतों में इन पत्रों का प्रवेश, समय- समय पर, अस्थायी रूप से निषिद्ध किया जाता रहा । सन् 1931 के प्रारम्भ में इसका फिर से प्रकाशन शुरू हो गया । इसका प्रसार सेन्ट्रल इंडिया तथा संयुक्त प्रान्त तक हो गया और मध्य प्रान्त के हिंदी भाषी जिलों में भी इसका पर्याप्त प्रभाव था ।

गांधी जी के सविनय अवज्ञा आंदोलन का देश के सभी पत्रों ने स्वागत किया । महाकौशल के पत्र उपयुक्त वातावरण निर्मित करने के लिए सजग थे । उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति के प्रयत्नों से संबंधित समाचारों एवं कांग्रेस के विचारों को प्रकाशित किया । गांव का मुखिया, कांग्रेस कार्यकर्ता या शिक्षक जो भी हो, वह अनपढ़, ग्रामीणों के मध्य, पत्रों को ऊंची आवाज में पढ़ता था । लोग उनसे समाचार जानने के लिए लालायित रहते थे ।

उन दिनों सरकारी दबाव एवं आर्थिक कठिनाईयां ऐसी थी कि पत्रों को अपनी जीवन रक्षा करना कठिन प्रतीत होता था । महाकौशल, जो हिंदी पत्र-पत्रिका का बाहुल्य क्षेत्र था, में 1921 से 1931 के दशक में पत्रों की संख्या 28 (1921) से घटकर 23 (1931) हो गई थी ।

8 मई के ***'दि टाइम्स'*** ने जबलपुर संवाददाता द्वारा प्रेषित समाचार का हवाला देते हुए सविनय अवज्ञा आंदोलन से संबंधित एक बड़ा ही रोचक समाचार प्रकाशित किया । जबलपुर कांग्रेस कमेटी ने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार से संबंधित एक जुलूस का आयोजन किया जिसमें धोबियों के 111 गधों को विदेशी कपड़ों के अंग्रेजी ड्रेस, कोट, पेन्ट, वेस्टकोट, हैट आदि पहनाए गये । गधे सभी रंग, साइज तथा आकार के थे । समानता केवल स्काट कोर्ट एवं टाई में थी । ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त उपाधियों के प्रति राष्ट्रीय अपमान प्रदर्शित करने हेतु प्रत्येक गधे को शासक के राय साहब, खान साहब, नाइट कमान्डर आदि के प्रतीक के रूप में सजाया गया था ।

1936 के अंतिम चतुर्थांश एवं 1937 का प्रारम्भ पत्रकारिता के इतिहास में अपनी अलग ही विशेषता रखता है । 1936 के अंत में 76 समाचार-पत्र एवं पत्रिकायें प्रकाशित हो रही थी । इसी वर्ष 18 नये समाचार पत्रों का पंजीयन किया गया एवं बीस काल-कवलित हो गये । ये पत्र अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर 1936 एवं 1937 के प्रारम्भ में चुनाव अभियान हेतु विशेष रूप से प्रारम्भ किये गये थे एवं चुनाव संबंधी उद्देश्यपूर्ण होते ही उनका प्रकाशन बन्द कर दिया गया ।

महाकौशल के समाचार पत्रों ने ग्रामीण क्षेत्रों से संपर्क के लिए अपनी पुरातन पद्धति को सर्वोत्तम माना । कोटवार, हरकारा या सरकारी संदेशवाहक डुगडुगी पीटकर अथवा चिल्लाकर जनता को सरकारी आदेश की सूचना देता था । ग्रामीण क्षेत्रों में पढ़े लिखे पाठक या शिक्षक, जिनकी संख्या सीमित होती थी, ग्रामवासियों के संदेशवाहक बनते थे । डिस्ट्रिक्ट कौंसिल ने उनसे निवेदन करते हुए लिखा – "हमें पत्र प्राप्त हुआ है कि बहुत सी ग्रामीण जनता को समाचार नहीं मालूम होते । यदि पढ़े लिखे सज्जन बाजार के दिन ग्रामीणों को पत्रिका के समाचारों से जानकारी करा दिया करें तो उन लोगो में जाग्रति हो सकती है ।"

महाकौशल की पत्र-पत्रिकाओं ने मात्र आंदोलनों के लिए जनता को प्रेरित कर ही अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं किया, अपितु शिक्षा, ग्रामोद्योग, हरिजनोद्धार आदि सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों को भी स्पर्श किया । रविशंकर शुक्ल द्वारा प्रारम्भ की गई, शिक्षा संबंधी विद्या मंदिर योजना इसी काल की देन है । यह बुनियादी शिक्षा की ऐसी योजना थी जिसके द्वारा प्रान्त की वृहत निरक्षरता को उत्तरोत्तर शीघ्रता से दूर की जा सके । यह योजना काफी लोकप्रिय होती चली गई । सन् 1939 तक सारे प्रान्त में चलाये जा रहे विद्यामंदिरों की संख्या 93 थी, जिसमें लगभग 2500 छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे । बुनियादी शिक्षा पर अनेक लेख इस काल के समाचार-पत्रों में मिलते हैं । *कर्मवीर* से लेकर *आदर्श* जैसे अल्पकालीन पत्रों ने इसके उद्देश्यों का प्रचार किया ।

वर्ष 1939-40 में नवीन पत्रों में कुछ पत्र तो लोगों में राजनीतिक जागरण हेतु निरंतर संघर्षरत रहे । इनमें जबलपुर से प्रकाशित होने वाला हिंदी साप्ताहिक *अग्रगामी* का महत्वपूर्ण स्थान था । यह फारवर्ड ब्लॉक के विचारों एवं सिद्धांतों का प्रचार करता था । 1939 में यह बंद हो गया था । जनवरी 1940 में पुनः प्रकाशित

हुआ और शीघ्र ही अप्रैल 1940 में फिर बंद हो गया । अपने राष्ट्रीय कर्तव्यों की पूर्ति हेतु प्रकाशित समाचारों के कारण इसे प्रताड़ना भी मिली । 1940 के प्रारम्भ में प्रदेश में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र-पत्रिकाओं की संख्या 87 थी । वर्ष में 29 नये समाचार पत्र प्रकाशित हुए एवं 23 का प्रकाशन बंद हो गया । इसी भांति वर्ष के अंत में 93 पत्र पंजीकृत रह गये ।

अगस्त 1942 में आंदोलन प्रारम्भ होने के पश्चात सारे भूमिगत कार्यकर्ता पूरे महाकौशल में बुलेटिनों तथा पर्चों के माध्यम से आंदोलन का प्रचार कर रहे थे । यद्यपि शासकीय दमन ने इस अभियान को भी प्रभावित किया, परन्तु इसे समाप्त नहीं किया जा सका । जबलपुर नगर के जिन भूमिगत कार्यकर्ताओं के प्रयास से जिन-जिन स्थानों में बुलेटिन छपते थे उनका उल्लेख भूमिगत आंदोलनकार्ताओं के कार्यों की शासकीय रिपोर्ट में किया गया है । सितम्बर 1942 में तो सैनिकों के सीखचों तक ये पर्चे पहुंचा दिये गये थे । अक्तूबर माह में भी बुलेटिनों तथा पर्चों के माध्यम से प्रचार का यह कार्य चलाया गया । कुछ प्रमुख शीर्षक थे – *स्वतंत्रता आंदोलन, भारत की स्वतंत्रता के लिए प्राण न्यौछावर कर दो, भारत के गांवों तथा शहरों की जनता को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के निर्देश* इत्यादि । एक छात्र रेलगाड़ी में कुछ यात्रियों को पर्चे बांटते समय गिरफ्तार कर लिया गया । जबलपुर नगर के एक सिनेमा हाल में बालकनी से पर्चो के बंडल फेंके गये । साइक्लोस्टाइल बुलेटिनों के माध्यम से पुलिस एवं गुप्तचर विभाग का बहिष्कार करने हेतु जनता से आह्वान किया गया था । केवल जबलपुर जिले में ही नहीं पूरे प्रान्त भर में ऐसे पर्चे दृष्टिगोचर हुये जिनमें पुलिस अधिकारियों तथा शासकीय सेवकों को पद त्याग करने तथा उस समय की घटनाओं पर ध्यान देने को कहा गया था ।

सरकार ने इस प्रकार के प्रकाशनों पर नियंत्रण रखने के लिए एक नया शस्त्र ढूंढ निकला। उसने इन बुलेटिनों हेतु कागज प्रदान करने वालों पर भी प्रहार किया । वे या तो कागज विक्रेता होते थे या स्वयं समाचार पत्रों के मुद्रक-प्रकाशक । सरकार ने 'न्यूजप्रिंट कंट्रोल आर्डर 1941' नामक नया अध्यादेश जारी किया, जिसके अनुसार 15 जून 1941 के बाद न्यूज प्रिंट की बिक्री एवं उपयोग पर अनेक प्रतिबंध लगाये गये।

सन् 1939 से 1942 तक महाकौशल में मुस्लिम लीग के कई समाचार पत्रों का प्रार्दुभाव हुआ जिनकी नीति कांग्रेस विरोधी थी और जो अंग्रेजों के प्रशंसक थे, उनसे साम्प्रदायिकता को बल मिला ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकौशल के राष्ट्रीय आंदोलन के काल में जन साधारण तक स्वतंत्रता का संदेश पहुंचाने में इन पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान था । स्वतंत्रता आंदोलन में प्रमुख नेताओं ने इन पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा संपादन द्वारा राष्ट्रीय जागरण और उसके संघर्ष को तीव्र किया । ब्रिटिश शासन के शिकंजों के बावजूद संघर्षों और अपमान से जूझते हुए महाकौशल की हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया तथा राष्ट्र के मान और उसकी मर्यादा की रक्षा हेतु अपने को समर्पित कर दिया ।

नोट : प्रस्तुत लेख मूल शोध-पत्र का सारांश है। इसके आकार एवं गुणवत्ता को ध्यान में रखकर इसे 'द इन्डियन आर्काइव्स' में प्रकाशित करने की योजना है।

राजनीतिक चेतना के सूत्रधार
पं0 माधव राव सप्रे: स्वतंत्रता सेनानी व राजनीतिक साहित्यकार

• प्रो. आभा आर. पाल

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय राजनीति में एक व्यापक परिवर्तन परिलक्षित हो रहा था । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की याचनावादी नीति के विरोध में अधिकार पूर्ण मांग की प्रवृत्ति विकसित हो रही थी जिसका प्रमुख स्रोत बाल गंगाधर तिलक के उग्र विचार थे । इस विचारधारा ने एक ओर जहाँ उत्कृष्ट, उद्दाम राष्ट्रवाद का शंखनाद किया वहीं दूसरी ओर लोगों को स्वावलम्बी होने के लिए प्रेरित किया । भारतीय जनता ने महसूस किया कि स्वदेशी और स्वराज एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । परिणामस्वरूप ''स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे'' का उद्घोष जनमानस को झकझोर गया और उग्र राष्ट्रवाद की जो प्रवृत्ति उनमें साहस के साथ जागृत हुई उसकी प्रज्वलित परिणति बंग-भंग के विरूद्ध आन्दोलन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है ।

छत्तीसगढ़ अंचल में, उक्त भावनाओं के परिपेक्ष्य में जो जननेता सक्रिय थे उनमें पं0 माधवराव सप्रे, वामनराव लाखे, रामराव चिंचोलकर प्रमुख थे । पं0 माधव राव सप्रे छत्तीसगढ़ के प्रथम पत्रकार, हिंदी के उच्च कोटि के साहित्यकार और प्रखर देशभक्त थे । उनका जन्म 19 जून 1871 को मध्यप्रदेश के दमोह जिले के पथरिया गाँव में हुआ था । उनकी प्राथमिक और मिडिल स्कूल की शिक्षा बिलासपुर में हुई । हाईस्कूल की पढ़ाई उन्होंने गवर्नमेंट हाई स्कूल रायपुर से पूरी की ।[89] यहीं से मेधावी माधवराव की रूचि साहित्य की ओर बढ़ी, जिसका श्रेय उनके दो शिक्षकों नंदलाल दुबे और वामनराव ओम को जाता है जिन्होंने हिंदी के प्रति उनके युवा मन में अगाध निष्ठा पैदा की और हिंदी में लेखन के लिए उन्हें प्रोत्साहित कर उनके व्यक्तित्व का

[89] ठाकुर हरि, छत्तीसगढ़ के रत्न, भाग I, रायपुर, 1970, पृष्ठ 27

निर्माण किया था । [90] यहीं उन्हें सहपाठी वामनराव लाखे भी मिले जो आने वाले वर्षों में उनके सहचिंतक और सार्वजनिक जीवन में उनके प्रमुख सहयोगी रहे । [91] उन्होंने उच्च शिक्षा जबलपुर, ग्वालियर और नागपुर से प्राप्त की । नागपुर के *हिस्लॉप कॉलेज* से बी0ए0 करते समय उनके सहपाठी पं0 रविशंकर शुक्ल, भगवती चरण दुबे, मूलचंद तिवारी और प्यारेलाल मिश्र आदि थे । [92] तत्कालीन नागपुर के प्रायः सभी विद्यार्थी लोकमान्य तिलक की विचारधारा के अनुगामी होते थे । नागपुर में होने वाले शिवाजी उत्सव, गणपति उत्सव और तिलक के चरित्र ने उन पर गहरा प्रभाव डाला । इस प्रकार जहां रायपुर में उनके व्यक्तित्व का साहित्यकार अंकुरित हुआ, वहीं नागपुर में राष्ट्रवादी भावना ने जोर पकड़ना शुरू किया । राष्ट्रवाद और साहित्य के जो बीज उनके अंतर में लगभग एक साथ ही प्रस्फुटित हुए उन्होंने माधवराव सप्रे को एक विशिष्ट पहचान प्रदान की । मराठी भाषी होकर भी सप्रे जी ने हिन्दी भाषा की सेवा जिस त्याग और निष्ठा के साथ की और छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना की दुदुंभी बजाई वह सर्वदा अनुकरणीय है । आज से एक शताब्दी पूर्व राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के पुरजोर हिमायती और राष्ट्रभाषा को सीधे राष्ट्रवाद से जोड़ने वाले माधवराव सप्रे ने अपने राष्ट्रवादी विचारों को हिन्दी ग्रंथमाला के लेखों में निर्भीकता से प्रस्तुत किया । *वर्तमान समय में हिन्दी का साहित्य किस प्रकार होना चाहिए* नामक अपने लेख में सप्रे जी लिखते हैं- 'हमारा साहित्य इस प्रकार का रहना चाहिए कि जिसके द्वारा हम अपने देश की उन्नति कर सकें । साहित्य से राष्ट्रोन्नति के कार्य में सदा सहायता मिलनी चाहिए । दक्षिण में महाराष्ट्रियों और उत्तर में सिक्खों का इतिहास इस बात की गवाही देता है कि साहित्य के प्रभाव ही से राष्ट्र की उन्नति होती है, लोगों में एक जातीयता के विचार-जागृत होते हैं, समाज की कर्तव्य शक्ति बढ़ती है, देश स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने लगता है ।[93]

---

[90] शुक्ल, संतोष कुमार, माधवराव सप्रे ; व्यक्ति एवं कृतित्व, भोपाल, 1966, पृ0 4

[91] ठाकुर हरि, पूर्वोक्त , पृ0 28,33

[92] महेश्वरी रामगोपाल, शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, जीवनी खंड, नागपुर, 1955, पृ0 5

[93] सप्रे, अशोक (संपादक) माधवराव सप्रे के हिंदी ग्रंथमाला के निबंध, पं0 माधवराव सप्रे साहित्य शोध केन्द्र, रायपुर, 2005, पृ0 16-17

इसके लगभग अठारह वर्षों बाद भी अखिल भारतीय हिंदी सम्मेलन के देहरादून अधिवेशन के सभापति पद से 11 नवम्बर 1924 को दिए गए उनके समापन भाषण की ये पंक्तियाँ हिन्दी भाषा को राष्ट्रवाद से सीधा जोड़ती हैं । 'पराधीनता की जंजीरों को तोड़ने के लिए अनेक साधन हैं । उनमें हिन्दी भाषा का प्रचार करना एक मुख्य साधन है । इसलिए भाइयों आओ, हम सब मिलकर इस बात का प्रण करें कि इस राष्ट्रभाषा का झंडा भारत के कोने-कोने में फहरा देंगे ।'[94]

हिन्दी भाषा, साहित्य, शिक्षा और राष्ट्रभाषा में गहरा संबंध स्थापित करने वाले पं० माधवराव सप्रे ने छत्तीसगढ़ की प्रथम पत्रिका *छत्तीसगढ़ मित्र* का प्रकाशन पेन्ड्रारोड बिलासपुर से, *हिंदी ग्रन्थमाला* (मासिक पत्रिका) और *हिंदी केसरी* (साप्ताहिक पत्र) का नागपुर से प्रकाशन कर राजनीतिक जन-जागरण का महत्वपूर्ण कार्य किया । विभिन्न विषयों पर उन्होंने दो सौ से अधिक निबंध लिखे । छत्तीसगढ़ को अपनी कर्मभूमि बनाने वाले सप्रे जी ने छत्तीसगढ़ की प्रथम महिला पाठशाला'' *जानकी देवी महिला पाठशाला, राष्ट्रीय विद्यालय* और *हिन्दू अनाथालय* की स्थापना रायपुर में की तथा 23 अप्रैल 1926 को उनका आकस्मिक निधन भी रायपुर में हुआ । वे उन महापुरूषों में थे जिन्होंने अपने अद्भुत कृतित्व से छत्तीसगढ़ को राष्ट्रीय पहचान दी ।
छत्तीसगढ़ मित्र- हिंदी पत्रकारिता को, जन जागृति लाने का सशक्त साधन मानने वाले पं० माधव राव सप्रे की गहन आस्था हिंदी भाषा में थी । उनका स्पष्ट अभिमत था कि राष्ट्रीय एकता को हिंदी के माध्यम से सुदृढ़ बनाया जा सकता है । हिंदी भाषा के माध्यम से सी०पी०एंड बरार के वन्याच्छादित, अपेक्षाकृत पिछड़े-क्षेत्र छत्तीसगढ़ के लोगों में सामाजिक चेतना और शिक्षा की अलख जगाने का प्रयास *छत्तीसगढ़ मित्र* था । जिसका प्रकाशन जनवरी 1900 में पेंड्रारोड (बिलासपुर जिला) से प्रारंभ हुआ । बीसवीं सदी के प्रारंभ में यहां न शिक्षा का समुचित विकास हुआ था और न ही आवागमन के साधनों का । ऐसी स्थिति में हिंदी सेवा तथा सामाजिक चेतना के माध्यम से देश सेवा और छत्तीसगढ़ के विकास का सपना पं० माधव राव सप्रे ने देखा और उसे साकार करने का ठोस प्रयास किया ।

---

[94] उद्धत, छत्तीगढ मित्र (पुर्नप्रकाशित), जून 2004, पृ० 3

छत्तीसगढ़ मित्र के प्रकाशन के साथ छत्तीसगढ़ के इतिहास में एक नए युग का प्रारंभ हुआ । इस मासिक प्रत्रिका को सप्रे जी ने स्वयं अपने व्यय पर निकालना प्रारंभ किया । इसके प्रकाशक पं० वामन राव लाखे तथा सम्पादक द्वय पं० राम राव चिंचोलकर एवं स्वयं सप्रे जी थे । इसका मुद्रण पहले रायपुर के *कय्यूमी प्रेस* से होता था जो बाद में *देश सेवक* प्रेस नागपुर से छपने लगा । 8''×6'' आकार की 32 पृष्ठों की इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य डेढ़ रूपया था । इसके प्रथम और अंतिम 4 पृष्ठ रंगीन होते थे ।[95] *छत्तीसगढ़ मित्र* के संवाददाताओं में पं० सुन्दरलाल शर्मा (राजिम), पं० पुरूषोत्तम प्रसाद पांडेय (मंदिर हसौद), श्रीमती सरस्वती बाई आदि थे । जो बाद में स्वाधीनता आन्दोलन से भी जुडे ।[96] *छत्तीसगढ़ मित्र* का उद्देश्य लोकाश्रय के सिंचन से सर्वसाधारण में जागृति उत्पन्न करना था । इसे क्षेत्र के सर्वप्रथम साहित्यिक गौरव के साथ राजनीतिक जागृति का संदेशवाहक होने का गौरव भी प्राप्त है । [97] साहित्यिक दृष्टिकोण से भी यह एक अनूठा पत्र था । [98] हिंदी ज्ञान प्रसार के लिए यह अत्यन्त लाभप्रद था । इसे राजनैतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में पर्याप्त सफलता मिली । विद्वानों एवं साहित्यकारों के बीच इसने महत्वपूर्ण स्थान अपने लिए बना लिया था ।

छत्तीसगढ़ मित्र में जनजागृति का बोध होता है । यह अंग्रजों का अंधानुकरण नहीं था । दासता का प्रतिकर करता था । भ्रष्टाचार का विरोध करता था । इसमें महापुरूषों के त्याग की कहानियाँ थीं, तो ऐतिहासिक तत्वों से परिचय भी होता था । साथ ही देश-विदेश के समाज, जीवन पद्धति की जानकारी इसमें दी जाती थी तो भारतीय नारी को प्रेरणा देते *नारी शिक्षा, नारी धर्म* जैसे लेख होते थे । इसमें महत्वपूर्ण समाचार छपते थे वहीं कहानियाँ और कविताएं इसकी लोकप्रियता को बढ़ाते थे । *समालोचना, प्रेरित पत्र, हितबोध* और *समाचार* इसके स्थाई स्तम्भ थे । देश के विभिन्न प्रान्तों से इसमें समालोचना के लिए पुस्तकें एवं प्रकाशनार्थ निबंध तथा कथा

---

[95] साक्षात्कार, डा. अशोक सप्रे, रायपुर – 8 जुलाई 2006

[96] सप्रे, पं० माधवराव सप्रे, छत्तीसगढ़ मित्र, अंक – 1, जनवरी 1900, पृ० 1

[97] राठौर देवी सिंह, पं० माधवराव सप्रे जीवन एवं साहित्य, पृ० 106

[98] रायपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृ० 525

साहित्य भेजा जाता था । बहुत ही कम समय में छत्तीसगढ़ मित्र ने अपनी राष्ट्रीय पहचान बना ली थी । *हिंदी बंगवासी* (कलकत्ता) *रसिक मित्र, भारत मित्र* (कलकत्ता), *गोरक्षण* (नागपुर), *श्री व्यंकटेश समाचार* (बंबई), *राजपूत* (आगरा), *नागपुर एंड बरार टाइम्स* (नागपुर), *सुबोध सिंधु* (खंडवा) आदि ने अत्यन्त उत्तम एवं उत्साह वर्धक सम्मतियां *छत्तीसगढ़ मित्र* के लिए प्रेषित की थीं । उत्तम एवं गंभीर लेख, 'उत्तम प्रबंध', 'साफ छपाई' के लिए इसे जहां शाबाशी दी गई थी वहीं विधा और शिक्षा के विकास तथा हिंदी भाषा की उन्नति एवं मासिक पत्रिकाओं की कमी को देखते हुए इसके नेक कार्य के लिए प्रसन्नता भी व्यक्त की गई ।[99] यह छत्तीसगढ़ क्षेत्र का व्यक्तिगत एवं सम्पूर्ण हिंदी साहित्य जगत का दुर्भाग्य था कि इतनी मूल्यवान तटस्थ और सेवाभाव से निकाली गई पत्रिका अर्थाभाव के कारण तीन वर्षों में छत्तीस अंक प्रकाशित कर बंद हो गई । व्यवस्थापक पं0 माधव राव सप्रे ने कुछ अंकों में ''ग्राहकों को सूचना'' के माध्यम से *''मित्र''* को *''आश्रय''* देने की अपील जारी की किन्तु आर्थिक कठिनाइयां न झेल पाने के कारण अंततः इसका प्रकाशन रोक दिया गया । फिर भी, सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितियों में, एक अहिंदी भाषी हिंदी सेवक की अदम्य जीवन शक्ति और पत्रकारिता को सम्पूर्ण इतिहास में शायद ही विस्मृत किया जा सकेगा ।[100] हिंदी के माध्यम से सामाजिक जागृति लाकर, शिक्षा और हिंदी साहित्य के महत्व को स्थापित कर रूढिवादिता और अज्ञान के अंधकार को ज्ञान की रश्मि से भेदने के उस कठिनतम कार्य में पं0 माधव राव सप्रे सफल रहे जिसके बाद ही राष्ट्रवाद का बीज तिलकवादी उग्र राष्ट्रवाद के रूप में प्रस्फुटित हो सका जिसकी भूमि, जल और वायु राष्ट्रप्रेम राष्ट्रीय सम्मान और राष्ट्र गौरव था ।

---

[99] बिहार बंधु समाचार, पृ0 6

हिंदी साहित्य में समालोचना का प्रारंभ छत्तीसगढ़ मित्र के माध्यम से सप्रे जी ने किया था । इस पत्र में प्रकाशित उनकी कहानी "एक टोकरी भर मिट्टी" हिंदी की पहली कहानी होने की हकदार है ।

[100] छत्तीसगढ़ मित्र का पुर्नप्रकाशन पं0 माधवराव सप्रे साहित्य शोध केन्द्र, रायपुर एवं वैभव प्रकाशन रायपुर के संयुक्त प्रयासों से डा. अशोक सप्रे (संपादक) द्वारा किया गया है । सन् 1900 के प्रथम 12 अंकों का पुर्नप्रकाशन जून 2004, नवम्बर 2004 एवं मार्च 2006 में हो चुका है । शोध केन्द्र में छत्तीसगढ़ मित्र की मूल पत्रियां एवं पांडुलिपियां सुरक्षित हैं ।

हिंदी ग्रन्थमाला- दिसम्बर 1902 में *छत्तीसगढ़ मित्र* का प्रकाशन बंद हो जाने के बाद से माधव राव सप्रे नागपुर चले गए । वे सन् 1901 से देश सेवक प्रेस नागपुर से जुड़ चुके थे । इसमें स्वाधीनता, स्वराज्य, शिक्षा, आर्थिक राष्ट्रवाद, स्वदेशी और बहिष्कार आदि विषयों पर बहुत ही उत्कृष्ट एवं समयोचित लेख छपे थे । बाद में वे *देश सेवक प्रेस* के व्यवस्थापक बने । हिंदी पत्रकारिता को और आगे बढ़ाने के उद्देश्य से उन्होंने नागपुर में 1 जनवरी 1905 को *हिंदी ग्रंथ प्रकाशक मंडली* की स्थापना की जिसका उद्देश्य था – 'हिंदी भाषा के पढ़ने वालों में देशोन्नति के नूतन विचारों की जागृति करने हेतु आधुनिक तथा उपयोगी विषयों के उत्तमोत्तम ग्रंथों को प्रकाशित करना ।' [101] इस मंडली द्वारा मई 1906 से मासिक पत्रिका *हिंदी ग्रन्थ-माला* का प्रकाशन प्रारंभ किया गया । यह पत्रिका *देश सेवक प्रेस* से मुद्रित होती थी और इसके व्यवस्थापक सप्रे जी थे । इस पत्रिका में भारत व अन्य देशों के इतिहास, देश-विदेश के प्रसिद्ध लोगों की जीवनी, ऐतिहासिक नाटक, उपन्यास, समालोचना, विज्ञान तथा भारत की तत्कालीन राजनीतिक विषयों के लेख तथा निबंध प्रकाशित किए जाते थे । स्पष्ट है कि *छत्तीसगढ़ मित्र* की तरह यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका नहीं थी, वैसे भी 1905-1906 का वर्ष देश की राजनीति में अपना विशिष्ट महत्व रखता है । बंगाल का विभाजन, स्वदेशी आन्दोलन, कांग्रेस के बनारस एवं नागपुर अधिवेशनों में स्वराज्य तथा स्वदेशी एवं बहिष्कार पर होने वाली लम्बी-चौड़ी बहसें, बनारस अधिवेशन में सप्रे जी का नागपुर से डेलीगेट होकर जाना, बाल गंगाधर तिलक से भेंट इत्यादि का मिला- जुला प्रभाव पं0 माधव राव सप्रे के मानस पर पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक था । फलस्वरूप, कलम को आधार बनाकर सप्रे जी ने राजनैतिक क्षेत्र में पर्दापण किया ताकि अंग्रेजी शासन की दमन एवं शोषण की नीति के विरूद्ध जनता में स्वदेशाभिमान जागृत कर सकें । समय की आवश्यकता के अनुरूप यह परिवर्तन सप्रे जी ने हिंदी ग्रन्थमाला के लेखों की विषयवस्तु में किया । स्वदेशी आन्दोलन के इस काल में लिखे गए उनके अनेक लेखों जैसे *हमारा धन कहां जा रहा है ? काले और गोरे, स्वराज्य और सुराज्य, शिक्षा-संस्कार* तथा उनका कालजयी लम्बा लेख *स्वदेशी-आन्दोलन और*

---

[101] वैदिक, वेद प्रताप, हिंदी पत्रकारिता के विविध आयाम, 1976, पृ0 158

छत्तीसगढ़ मित्र का प्रकाशन एक वर्ष तक कय्यूमी प्रेस, रायपुर से हुआ था । दूसरे और तीसरे वर्ष अर्थात् 1901 एवं 1902 में इसका मुद्रण नागपुर के देशसेवक प्रेस से हुआ था ।

बायकाट[102] केवल उनकी उत्कृष्ट राष्ट्रवादी भावना और उद्दाम देश प्रेम के दर्शन ही नहीं कराता है, वरन् यह स्पष्ट संकेत देता है कि किस प्रकार वे देश की जनता में उनके सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना जगाने का प्रबल प्रयास कर रहे थे । यही कारण है कि उनके लिखे हुए लेख आज भी प्रासंगिक हैं ।

पं0 माधव राव सप्रे ने स्वदेशी का अत्यन्त व्यापक अर्थ लिया था । उनके अनुसार 'जिन-जिन बातों से स्वदेश की उन्नति होती है वे सब स्वदेशी ही हैं'। [103] साहित्य, हिंदी भाषा, अर्थनीति राजनीति (स्वराज्य) शिक्षा नीति आदि सभी क्षेत्रों में यह मूल स्वदेशी भाव निहित है । वस्तुतः बंग-भंग से उपजे स्वदेशी आन्दोलन के लगभग तीस वर्ष पूर्व महाराष्ट्र में गणेश वासुदेव जोशी ने 'स्वदेशी वस्तु के व्यवहार' का आन्दोलन किया था [104] जो भारत में राजनैतिक आर्थिक चेतना के जन्म की ओर संकेत करता है । परन्तु तत्कालीन स्वदेशी आन्दोलन एक विराट जनशक्ति के आंदोलन के रूप में उभरा क्योंकि बंग-भंग के द्वारा भारत में एक जातीयता, एक राष्ट्रीयता को नष्ट करने का निंदनीय कार्य किया गया था । 'बहिष्कार' स्वदेशी का अभिन्न हिस्सा है । इसका पक्ष जहां स्वाभिमान है, वहीं दूसरा व्यवहारिक पक्ष अपने समाज के आर्थिक संरक्षण का है । सप्रे जी लिखते हैं, ''सब लोग जानते हैं कि जब किसी की नाक बन्द कर दी जाती है तब उसका मुंह आप ही खुल जाता है''। [105] बहिष्कार एक प्रकार का व्यापार युद्ध है । सप्रे जी लिखते हैं, 'इस युद्ध में शास्त्रों की जरूरत है और जरूरत है सिर्फ हमारे दृढ़ निश्चय, एवं भाव और निस्सीम देश भक्ति की । इस युद्ध में हमको जितनी सफलता प्राप्त होगी, उतना ही हमारे देश का कल्याण होगा'।[106]

---

[102] डा. अशोक सप्रे (संपादक) माधवराव सप्रे "हिंदी ग्रंथमाला" के निबंध पूर्वोक्त, पृ0 5

[103] वही, पृ0 9

[104] सप्रे माधवराव, स्वदेशी आंदोलन और बायकाट, वही, पृ0 32

[105] वही, पृ0 37

[106] वही, पृ0 43, 44

सप्रे जी का हृदय चीत्कार करता है । वे आगे लिखते हैं 'अंग्रेज व्यापारी हर साल तीस करोड़ का कपड़ा इस देश में बेचकर हमारा धन लूट ले जाते हैं । क्या इस बात से हमारा जी जलना ना चाहिए ? यदि विदेशी वस्तु के संबंध में घृणा उत्पन्न होकर उसका त्याग न किया जाएगा तो स्वदेशी वस्तु की मांग ही न बढ़ेगी तो बड़ी-बड़ी मिलें और नए – नए कारखाने किस प्रकार खुल सकेंगे ? ऐसी अवस्था में यदि हम 'स्वदेशी' और 'बायकाट' की सहायता से अपने देश के व्यापार और कारखानों की उन्नति करने का प्रयत्न करें तो डर किस बात का है ?[107] बायकाट और स्वदेशी वस्तु मंहगी होने पर यह घाटे का सौदा नहीं होता क्योंकि इससे देश को कोई हानि नहीं हो सकती । व्यक्ति से ऊपर है देश – यही भाव स्पष्ट दिखाई देता है और यही संदेश भी दिया गया है । ऐसा मान लीजिए कि जो विदेशी वस्तु एक रूपए की मिलती है, वही स्वदेशी वस्तु हम लोगों को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सवा रूपए में लेनी पड़ती है – अर्थात् हम लोगों को चार आने अधिक देने पड़ते हैं । इस हिसाब से यदि पाँच करोड़ का स्वदेशी माल खरीदा जाए तो ग्राहकों को एक करोड़ रूपए अधिक देने पड़ेंगे। इसीलिए कोई- कोई कहते हैं कि स्वदेशी आन्दोलन से लोगों को हानि होती है । परन्तु वे लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते कि पाँच करोड़ का स्वदेशी माल न लेते हुए यदि चार करोड़ का विलायती माल लिया, तो वे चार करोड़ रूपये सब विलायत को चले जायेंगे और यदि चार करोड़ के विलायती माल के बदले पाँच करोड़ का स्वदेशी माल लिया जाए तो वे पाँच करोड़ रूपये इसी देश में बने रहेंगे, जो रूपया देश में रह जाता है अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार, वही द्रव्य, नए-नए कारखाने खोलने के समय, पूंजी का काम देता है''। [108]

तथ्यों और आंकड़ों के द्वारा सप्रे जी ने बताया कि अंग्रेजों ने हमारा व्यापार कैसे बरबाद किया । वे लिखते हैं कि अनेक अन्यायी, कठोर और जालिम उपायों से अंग्रजों ने इस देश के जुलाहों और अन्य व्यवसायियों का रोजगार बन्द कर दिया । उन्होंने जान बूझकर, केवल स्वार्थ बुद्धि से इस देश का व्यापार बरबाद कर दिया और इस देश के लोगों को कृषि पर निर्वाह करने और केवल कच्चा माल तैयार करने को

---

[107] वही, पृ0 52, 54

[108] वही, पृ0 68, 69

मजबूर किया । [109] *स्वदेशी–आन्दोलन और बायकाट: अर्थात् भारतवर्ष की उन्नति का एक मात्र उपाय* उनकी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रखर लेखनी का कमाल था । यह लेख बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ और ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित किया गया ।

पं0 माधव राव सप्रे अपने सभी लेखों में अंग्रेजी शासन, व्यापार नीति, राज्य पद्धति और उनके नस्ल भेद तथा नस्लगत अंहकार के प्रति आग उगलते थे । 'जब से यहां अंग्रेजी अमलदारी हुई है, तबसे इस देश के प्रचंड और प्राचीन शरीर से धन-रूपी रक्त अनेक मार्गों से बहता जा रहा है, मानों उसमें से हजारों जोंकें रक्त चूस रही हैं । आश्चर्य की बात है कि देश रक्तहीन होकर जर्जर हो रहा है, पर हम लोगों की आंखें नहीं खुलती'[110] अंग्रेजी शासन के विदेश व्यापार एवं पूंजी निवेश नीति में निहित स्वार्थ का कच्चा चिट्ठा इस लेख के माध्यम से सप्रे जी ने लोगों के सामने रखा । इसी प्रकार अंग्रेजों की नस्ल भेद की नीति और भारतीयों को 'काला आदमी' कहकर अपमानित करने का भाव जिससें वयोवृद्ध दादाभाई नौरोजी तक पार्लियामेंट सभा में नहीं बच सके थे,[111] पर पैनी दृष्टि डालकर *काले और गोरे* नामक निबंध में भारतीयों को अंदर तक हिला दिया था । इसी प्रकार स्वराज्य और सुराज्य का अंतर तथा स्वराज्य की विद्वतापूर्ण व्याख्या उन्होंने अपने लेख स्वराज्य और सुराज्य में की है । अंग्रेजी राज्य प्रबंध ना तो स्वराज्य है और ना ही सुराज्य । [112]

इस प्रकार पं0 माधव राव सप्रे ने अपने तमाम लेखों के माध्यम से विदेशी शासन के दुष्परिणामों की ओर आम लोगों का ध्यान आकर्षित किया और सरल उदाहरणों से स्वदेशी के महत्व को समझाया । आर्थिक राष्ट्रवाद के सभी पहलुओं को सप्रे जी ने इतनी आसान भाषा में समझाया है कि उसमें कोई सैद्धान्तिक क्लिष्टता दृष्टिगोचर ही नहीं होती । निःसंदेह उन्होंने अपनी लेखनी से राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी ।

---

[109] वही, पृ0 69, 74

[110] सप्रे, पं0 माधवराव, हमारा धन कहां जा रहा है ? वही, पृ0 100

[111] सप्रे, पं0 माधवराव, काले और गोरे, वही, पृ0 107

[112] सप्रे, पं0 माधवराव, स्वराज्य और सुराज्य, वही, पृ0 114, 118

हिंदी केसरी- सन् 1905 के कांग्रेस के बनारस अधिवेशन में पं0 माधव राव सप्रे प्रतिनिधि के रूप में नागपुर से गए थे । वहां तिलक से उनकी भेंट हुई । तिलक की विचारधारा, लेखनी और कार्यों से वे अतिशय प्रभावित थे । उन्होंने तिलक के कार्यों और विचारों का प्रचार हिंदी संसार में यथाशक्ति करने की इच्छा प्रकट की । मध्य प्रान्त के हिंदी भाषी क्षेत्रों तथा संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में हिंदी में प्रचार करने वाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता भी थी । तिलक की अनुमति से उनके *हिंदी केसरी* नाम से *केसरी* का हिंदी संस्करण माधव राव सप्रे के सम्पादन में साप्ताहिक पत्र के रूप में निकालने का आयोजन किया गया । नागपुर में सप्रे जी के मित्र डा0 बालकृष्ण मूंजे थे जो तिलक के साथ बंगाल में स्वदेशी प्रचार के लिए भ्रमण कर चुके थे । सप्रे जी को नागपुर में डा0 बल्देव राज आदि ने तन-मन-धन से सहायता दी । सप्रे जी ने पत्र का डिक्लेरेशन अपने नाम से किया और 13 अप्रैल 1907 को *हिंदी केसरी* का पहला अंक रायपुर से प्रकाशित हुआ । डा. बालकृष्ण मूंजे इसके प्रकाशक थे । [113] *सरस्वती* [114] के मई अंक में इसकी भूरि-भूरि प्रंशसा की गई थी और कहा गया कि इसका सम्पूर्ण श्रेय पं0 माधव राव सप्रे को ही जाता है । पहले अंक की तीन हजार प्रतियाँ मुद्रित हुई । 'सरस्वती' के मई 1907 के अंक में *हिन्दी केसरी* का वर्णन इन शब्दों में मिलता है – *हिंदी केसरी* निकल आया । अच्छा अंक निकला । पिछले पृष्ठ में नाम के ऊपर मातृभूमि का चित्र है । सिर पर मुकुट है । एक सिंह इधर, एक उधर अपना एक-एक पंजा मुकुट पर रखे हैं । ऊपर वन्दे मातरम् छपा है । वह बहुत अच्छा बना है । भाव से भरा है । आशा है इससे वही काम होगा जो तिलक महाशय के मराठी केसरी पत्र से हो रहा है । इसके निकलने का सारा श्रेय पं0 माधव राव सप्रे बी.ए, को है ।[115] इसके मुखपृष्ठ पर मराठी केसरी में छप रहे पं0 जगन्नाथ के संस्कृत श्लोक का हिंदी में अनुवाद, पद्य रूप से छापा जाता था (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवदी ने यह संस्कृत से हिंदी में अनूदित किया था) इसमें भारत को सोते

---

[113] सप्रे, पं0 माधवराव(संपादक) हिंदी केसरी, वर्ष 1, अंक 1, 13 अप्रैल 1907, पृ0 1

[114] सरस्वती, मई 1907

[115] सप्रे, पं0 माधवराव(संपादक) हिंदी केसरी, वर्ष 1, अंक 1, 13 अप्रैल 1907 मुख पृष्ठ

हुए केसरी की उपमा देकर पाठकों को उसके जगाने पर उसकी उग्रता और शौर्य का विश्वास दिलाया गया था । उन्हीं शब्दों में –

"स्वामी कुंजर वृंद के इस घने कान्तार के भीतर,
रे एक क्षण भी तू न ठहरना उन्माद में आकर ।
हाथी जान शिला विदीर्ण करने पैने नखों से निरी
सोता है गिरी गर्भ में, यह यहीं भीमाकृति केसरी । "[116]

हिंदी केसरी को प्रकाशित करने का उद्देश्य भारतीयों में जनजागृति उत्पन्न करना था, लोगों को निर्भीक बनाना था । इस संबंध में सप्रे जी ने लिखा था - "विज्ञापन से विदित हुआ होगा कि हमने वर्तमान समय के राजनैतिक वीर और तत्ववेत्ता के सार्वजनिक विचार, जो अब तक केवल मराठी में प्रकट होते हैं, हिंदी में प्रकाशित करने का निश्चय किया है । अब केवल इन्हीं बातों का विचार किया जाए कि किन उपायों से सरकार की वर्तमान राजनीति और शासन पद्धति में हम लोग सुख कारक परिवर्तन करा सकेंगे । किन उपायों से आर्यमाता राजनैतिक दासत्व से मुक्त होकर स्वराज्य का सुखकारी मुकुट अपने मस्तक पर धारण करेंगी "[117] इस प्रकार *हिंदी केसरी* का मूल उद्देश्य तिलक के उग्र राष्ट्रवादी विचारों को जन साधारण तक पहुंचाना था । राष्ट्रीय चेतना जगाने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य करते हुए शीघ्र यह एक राष्ट्रीय पत्र बन गया । *हिंदी केसरी* में स्वतंत्रता संग्राम के समाचार छपते थे । इससे पाठकों को आंदोलन की गतिविधियां, उसके विस्तार और आम जनता के योगदान की जानकारी मिलती थी । 24 अगस्त 1907 के अंक में *भारत में असंतोष* शीर्षक से स्वदेशी आंदोलन, बहिष्कार और मुकदमे आदि के समाचार प्रकाशित हुए । इसी अंक में *कोचीन के समाचार* में लिखा गया - "राजा के कालेज के कुछ विद्यार्थियों ने एक बड़ी सभा की थी, उसमें वन्दे मातरम् गीत गाया था और वन्दे मातरम् का जयघोष किया था । यह खबर सुनकर दीवान ने प्रिंसिपल से इसकी कैफियत मांगी है ।[118] *हिंदी केसरी* इस प्रकार निर्भीकता से स्वदेशी आंदोलनकारियों और क्रांतिकारियों

---

[116] वही, पृ0 198

[117] वही, 2 अगस्त 1907

[118] जगमोहन दास स्मृति ग्रंथ, 1968, पृ0 128

का समर्थन करने में उत्साह के साथ जुटा रहा और साथ ही यह संदेश भी देता रहा है कि भारतवासी स्वाधीनता की लड़ाई में, एक ही लक्ष्य की प्राप्ति में एकजुट हैं ।"[119]

[119] हार्डीकर, गोविन्दराव, पं0 माधव राव सप्रे (जीवनी), जबलपुर, 1950 पृ0 109

इलाहाबाद की साहित्यिक संस्थाएं और बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में उनका राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान

• डा. देवेन्द्र कुमार शर्मा

20 वीं शताब्दी का पूर्वाद्ध सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण है। इस समय भारत के राजनीतिक रंगमंच पर विप्लवकारी परिवर्तन हुए और अँग्रेज़ी राज्य के पर्दे के पीछे शासकों की दमन नीति का नग्न नृत्य हुआ । 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही शासन ने शोषण, दमन और आतंक की जिस नीति का अनुसरण किया उसका स्पष्ट उल्लेख, युगीन साहित्य में मिलता है ।

राजनीतिक गतिविधियों के विस्तार हो जाने से साहित्य के विषयों का एक निश्चित सीमा तक विस्तार हुआ। 19वीं शताब्दी में वर्णित समस्त विषयों के साथ ही स्वतंत्रता आंदोलन की गतिविधियां भी साहित्य जुड़ गईं । कांग्रेस और क्रांतिकारी, स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए उनके प्रयास, आजाद हिंद फौज, गांधी जी का असहयोग आंदोलन और इसके प्रतिक्रिया स्वरूप नौकरशाही की दमन नीति आदि विषयों का साहित्य में समावेश हुआ ।

उसी समय इलाहाबाद में एक प्रकार से राजनीतिक एवं साहित्यिक आंदोलन प्रारम्भ हुआ तथा इलाहाबाद गंगा, यमुना एवं सरस्वती की त्रिवेणी ही नहीं रहा बल्कि वहां गद्य, पद्य एवं पत्रकारिता की त्रिवेणी, निराला, पंत एवं महादेवी की त्रिवेणी, पं बाल कृष्ण भट्ट, पं मदन मोहन मालवीय और पुरूषोत्तम दास टंडन की त्रिवेणी भी प्रयाग में प्रवाहित हुई ।

इस समय *सरस्वती, चाँद* और *मर्यादा* जैसी अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ और अनेक छोटी-बड़ी साहित्यिक संस्थाएं भी अस्तित्व में आ गईं जिन्होंने संस्कृति एवं राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इस युग के साहित्यकार देश की दशा और समाज की स्थिति से पूर्णतया परिचित थे । वे समाज

से के अलग केवल एकांतवादी बौद्धिक चमत्कार के व्यक्तिवादी रचनाकार नहीं थे अपितु समाज के भीतर रहकर उसका सुख-दुःख आशा-निराशा और संकल्प को भोगने और संवारने वाले लोग थे । वे यह महसूस कर रहे थे कि जिस कार्य को एक व्यक्ति कर सकता है यदि उस कार्य को कुछ व्यक्ति मिलकर करें तो कार्य उत्तम और शीघ्र किया जा सकता है ।[120]

मौलिक व्यक्तित्व के धनी साहित्कार जो व्यक्तिगत अनुभूतियों का समाज को दान देते हैं, वे संगठन के कच्चे होते हैं, फिर भी इस युग का साहित्यकार उठा और अन्य क्षेत्रों में जिस प्रकार संगठन हो रहा था, उसके लिए सक्रिय हुआ । उनके भीतर एक दूसरे के सहयोग की भावना थी क्योंकि वे सभी मौलिक तो थे ही निर्माण की शक्ति भी उनमें थी ।[121]

इलाहाबाद में इस समय देश के प्रमुख साहित्यकार उपस्थित हो चुके थे और इलाहाबाद साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया था । हिंदी रंगमंच पर पं० मदन मोहन मालवीय का पदार्पण हो चुका था । बाबू श्याम सुन्दर दास और महावीर प्रसाद द्विवेदी संपर्क सूत्रधार बन चुके थे । *हिंदी प्रदीप* और *सरस्वती* ने एक वातावरण का सृजन किया जिससे इलाहाबाद में अनेक साहित्यिक संस्थाओं का जन्म हुआ और उन्होंने भारतीय साहित्य, संस्कृति और राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।[122]

हिंदी साहित्य सम्मेलन (1910) – हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना उस साहित्यक आंदोलन का परिणाम थी जिसकी नींव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पड़ी । *काशी नागरी प्रचारिणी सभा* का गठन हुआ । शैक्षणिक एवं राजनीतिक क्षितिज पर मालवीय जी का पदार्पण हुआ । इसके पूर्व मालवीय जी प्रयाग में 1884 में हिंदी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा का गठन कर चुके थे ।[123]

---

[120] कार्य विवरण, प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन, काशी (ना. प्र. सभा)

[121] पाण्डेय, सुधाकर, हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास (सं 2030) खण्ड 9

[122] प्रमोद विश्वनाथ, प्रयाग का हिंदी साहित्य, उत्तर प्रदेश , 1984, पृष्ठ 85

[123] पी. के. मालवीय संग्रह, फा० संख्या xx/30 राष्ट्रीय अभिलेखागार

सभा के प्रथम सम्मेलन के गर्भ से हिंदी साहित्य सम्मेलन का जन्म हुआ, यह सभी की राजनीतिक शाखा थी और प्रारंभ से ही इसका लक्ष्य राष्ट्रवाद था । दूसरा साहित्य सम्मेलन 1911 में प्रयाग में हुआ । इसकी अध्यक्षता पं० गोविंद नारायण मिश्र ने की । यहां से हिंदी साहित्य सम्मेलन की नींव सुदृढ़ हुई ।[124] सभा के प्रथम दोनों सम्मेलन साहित्यिक न होकर पूर्णत: राजनीतिक थे, इन सम्मेलनों में राजनीतिक विषयों पर व्याख्यान और चर्चाएं हुईं ।[125]

हिंदी साहित्य सम्मेलन ने साहित्य निर्माण और राष्ट्र निर्माण दोनों को एक दूसरे का पूरक माना । साहित्य क्या हमें राष्ट्र निर्माण में सहायता नहीं दे सकता ? क्या हमारे देश की उन्नति में हमारा पथ प्रदर्शक नहीं हो सकता ? अवश्य हो सकता है यदि हम लोग जीवन के व्यवहार में उसे अपने साथ – साथ लेते चलें, उसे पीछे न छूटने दें । यदि हमारे जीवन का प्रवाह एक ओर जा रहा है, और हमारे साहित्य का प्रवाह दूसरी ओर को है, तब हमारा उसका प्रकृत संयोग नहीं हो सकता ।[126]

हिंदी साहित्य सम्मेलन की जो परम्परा 1910 में प्रारम्भ हुई वह आज भी अनवरत जारी है । यह सम्मेलन देश के विभिन्न शहरों में हुए जिन्होंने जन जागृति लाने में अहम भूमिका निभाई । इन सम्मेलनों का सभापतित्व पं० मदन मोहन मालवीय, मोहन दास कर्मचंद गांधी और के. एम. मुंशी जैसे राजनीतिज्ञों ने किया और राष्ट्रीय आंदोलन को गति प्रदान की ।[127]

हिंदुस्तानी एकेडमी (1927) : हिंदुस्तानी एकेडमी की स्थापना 1927 में हुई इसके अनेक वर्ष पूर्व से ही ऐसी संस्था की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था जो आधुनिक भारतीय भाषाओं एवं साहित्य की उन्नति के लिए आवश्यक कदम उठाए

---

[124] मालवीय और हिंदी, पी. के. मालवीय संग्रह, फा० संख्या xx/67 राष्ट्रीय अभिलेखागार

[125] वही

[126] मेहता, नरेश, हिंदी साहित्य सम्मेलन का इतिहास, खण्ड 1 , 1996, पृष्ठ 67

[127] मेहता, नरेश, हिंदी साहित्य सम्मेलन का इतिहास, खण्ड 2 , 1996, पृष्ठ 293-94 एवं – सम्मेलन एक परिचय , 2000 पृष्ठ 8

। देश में जागृति, पुरानी कृतियों की याद, जापान के आश्चर्यजनक विषयों की कथा , यूरोप के आंतरिक कलह और हिंदुस्तान की क्षितिज पर आशाओं के असीम दृश्यों की झलक इसके प्रेरणा स्रोत बने ।[128]

हिंदुस्तानी एकेडमी का उद्घाटन मार्च 29, 1927 को तत्कालीन गर्वनर 'सर विलियम मौरिस' द्वारा हुआ । इस संस्था के निर्माण में शिक्षा मंत्री राय राजेश्वर वाली ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । [129] हिंदुस्तानी एकेडमी ने साहित्य एवं संस्कृति के उत्थान के उद्देश्य से कार्य करना आरंम्भ किया । इसके प्रथम अध्यक्ष सर तेज बहादुर सप्रू हुए तथा डॉ. ताराचंद को सचिव बनाया गया । [130] दोनों ही विद्वानों तथा अन्य परवर्ती विद्वानों ने साहित्य के विकास के लिए व्याख्यानमालाओं, पुरस्कार, प्रकाशन, आयोजन और सम्मेलनों का सहारा लिया । व्याख्यानमालाओं में देश के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों को आमंत्रित किया गया । मौलाना अब्दुल यूसुफ अली, गौरी शंकर हीरा चंद ओझा, मौलाना सैयद सुलेमान नकवी, डा. ताराचंद, डा. जाकिर हुसैन, पद्य सिंह शर्मा , राहुल सांकृत्यायन, बाबू राम सक्सेना, वासुदेव शरण अग्रवाल, फादर कामिल बुल्के, प्रो0 देवेन्द्र नाथ शर्मा, डा. राजेन्द्र प्रसाद के व्याख्यान विशेष उल्लेखनीय हैं । [131]

हिंदुस्तानी एकेडमी ने न केवल सम्मेलन आयोजित किए बल्कि साहित्य के प्रकाशनों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । हिंदुस्तानी शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जिसके लेख न केवल साहित्यिक होते थे बल्कि राजनीतिक, इतिहास एवं संस्कृति तथा राष्ट्रीय आंदोलन पर केन्द्रित होते थे ।

सुकवि समाज (1930) - इलाहाबाद के साहित्य में 1920-30 का दशक महत्वपूर्ण है । पद्मकांत मालवीय को ऐसी संस्था की आवश्यकता महसूस हुई जिसमें

---

[128] हिंदुस्तानी (सम्पादकीय) भाग 1, अंक 1, 1931 पृष्ठ 124

[129] श्रीवास्तव, सालिग राम (संपादक) प्रयाग प्रदीप, हिंदुस्तानी एकेडमी 1937 पृष्ठ 168

[130] हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबादः परिचय व्रत, प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडमी 1992 पृष्ठ 5

[131] वही, पृष्ठ 77

विश्वविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के बाहर के व्यक्ति सम्मिलित हों – और विचार गोष्ठियों के माध्यम से दोनों में परस्पर तालमेल हो तथा साहित्य के उत्थान के लिए प्रयत्न किए जाएं । पद्मकांत मालवीय के सद्प्रयासों से 'सुकवि समाज' की स्थापना की गई इसमें इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के बाहर दोनों जगह के व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया । महादेवी वर्मा, पद्मकांत मालवीय और डा. रामकुमार को इसका सचिव बनाया गया ।[132]

सुकवि समाज की पाक्षिक बैठकें होती थीं, इसका कार्यालय डा. राजकुमार वर्मा का घर था ।[133] इसकी बैठकों में साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर चर्चा होती थी । इसका महत्वपूर्ण योगदान यह है कि यह तत्कालीन समय में देश के विद्वानों को एक मंच पर लेकर आया ।

हिंदी लेखक संघ (1935) – सन् 1935 में साहित्य के क्षेत्र में निराला तथा पंत जैसे साहित्यकार साहित्य साधना में रत थे , किन्तु लेखकों का कोई मंच नहीं था । सत्य जीवन वर्मा ने इस दिशा में प्रयास किए और हिंदी लेखक संघ नामक संस्था का गठन किया । यह संस्था उच्च आदर्शों से ओत-प्रोत थी तथा यह राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में साहित्यकारों का एवं राजनीतिक मंच बन गया । इसने एक मासिक पत्र 'लेखक' निकालना शुरू किया । समय क्रम के अनुसार आजादी के आंदोलन में यह संस्था विलीन हो गई ।[134]

भारतीय हिंदी परिषद (1942) – भारतीय हिंदी परिषद की स्थापना इलाहाबाद विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष डा. धीरेन्द्र वर्मा की सुनिश्चित तथा सुसंगठित योजना के फलस्वरूप हुई जो 3-4 अप्रैल 1942 को मिश्र बंधुओं की अध्यक्षता में गठित हुई । इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा. अमर नाथ झा ने 4 अप्रैल 1942 को हिंदी विभाग में इसका संस्था के रूप में उद्घाटन किया ।[135]

---

132 उत्तर प्रदेश, प्रभाग अंक, प्रकाशन सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उ0 प्र0 सरकार , 1984, पृष्ठ 85

133 वही, पृष्ठ 85

134 श्रीवास्तव, सालिगराम (संपा), प्रभाग प्रदीप प्रका0 हिदुस्तानी एकेडमी 1937, पृष्ठ 168

135 भारतीय हिंदी परिषद, रजत जयंती समारोह अंक, दिसम्बर 1967 पृष्ठ 3

परिषद ने हिंदी साहित्य के संकीर्ण वातावरण से ऊपर उठकर भाषा तथा साहित्य के संबंद्ध मानवीय संपर्क, महत्वपूर्ण सामाजिक चेतना, राष्ट्रीय मनोवेश के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । भारतीय हिंदी परिषद् से अनेक स्व- नामधन्य व्यक्ति जुड़े , महात्मा गांधी, मदन मोहन मालवीय, डा. भगवान दास, वाक शिव प्रसाद गुप्त, श्याम बिहारी मिश्र, श्याम सुंदर दास, गौरी शंकर हीरा चंद ओझा, शुभदेव बिहारी मिश्र, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जगन्नाथ प्रसाद भानु, डॉ राजेन्द्र प्रसाद, पुरूषोत्तम दास टण्डन, मैथिलीशरण गुप्त, डॉ सम्पूर्णानंद, आचार्य शिव पूजन सहाय, सेठ गोविंद दास, बाबू राम सक्सेना जैसे विद्वान एक मंच पर आए ।

यह संस्था पूर्णत: साहित्य को समर्पित थी किन्तु तत्कालीन गतिविधियों से अछूती न रही । यह दौर राष्ट्रीय आंदोलन का था और इसमें यत्र-तत्र रूप में इसकी सहभागिता दिखाई देती है 1 [136]

परिमल (1945) – इलाहाबाद में 1936 में एक नया गुट उभरा, जिसने अपने आपको प्रगतिशील लेखक संघ के रूप में संगठित किया । संघ की मान्यताओं में रचनाकार का पक्ष पहले से दिया रहता था तथा रचनाकार को उस पर चलना होता था ।[137] प्रगतिवाद का मतलब हो गया था मार्क्सवाद, नव लेखन की ओर प्रवृत्त होने वाले रचनाकारों ने इस प्रकार की वैचारिक प्रतिबद्धता को स्वीकार नहीं किया । 12 दिसम्बर 1945 को परिमल की नींव डाली गई । विशन नारायण कपूर, गिरिधर गोपाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजय देव नारायण साही, केशव चंद्र वर्मा, लक्ष्मी कांत वर्मा आदि इसके संस्थापक सदस्य थे ।[138]

परिमल के रचनाकार प्रगतिशील संघ की विचारधारा को विपरीत मानते थे । उनका मानना था कि रचनाकार अपना पक्ष स्वयं बनाएं, वह इतना समर्थ है कि उसे

---

[136] वही, पृष्ठ 11

[137] साक्षात्कार केशव चंद्र वर्मा, दिनांक 22 अप्रैल 2000

[138] उत्तर प्रदेश, प्रयाग विशेषांक , प्रकाशन सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उ0 प्र0 1984, पृष्ठ 87

बने बनाए, पहले से दिए हुए, पक्ष पर चलने की जरूरत नहीं । वह चाहे तुलसीदास हो, चाहे निराला हो, चाहे पंत हो, चाहे महादेवी हो, रचना में अपना पक्ष रखते हैं 1 [139]

इस संस्था के संचालन में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और लक्ष्मीकांत वर्मा की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी । इनकी गोष्ठियों में साहित्य निर्माण, राष्ट्र निर्माण से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय लिए गये, जिससे संपूर्ण हिंदी जगत प्रभावित हुआ । इस संस्था के माध्यम से सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती, रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, जगदीश गुप्त, गिरिधर गोपाल, लक्ष्मी कान्त वर्मा, विजयदेव नारायण साही, केशव चंद्र वर्मा, मलयज, विपिन अग्रवाल, उमाकांत मालवीय , श्रीराम वर्मा आदि दो पीढियों के रचनाकार सामने आए ।[140]

साहित्यकार संसद (1946) - सन् 1946 में प्रयाग की पावन भूमि पर एक और साहित्यिक संस्था का उदय हुआ । श्रीमती महादेवी वर्मा ने राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के सहयोग से साहित्यकार संसद की नींव रखी । श्री माखन लाल चतुर्वेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, इलाचंद्र जोशी, सियारामशरण गुप्त, रामकृष्ण दास, गुलाब राय, महन्त आनन्द कौशल्यायन, आदि साहित्यकार इसके संस्थापक सदस्यों में से थे । [141]

साहित्यकार संसद का मुख्य उद्देश्य था कि यहां साहित्यकार आएं और वहां रूककर साहित्य सृजन करें । मार्च 1947 में साहित्यकार संसद का भवन इलाहाबाद से 4 कि. मी. दूर रसूलाबाद में खरीदा गया । इस भवन में दूर-दूर से साहित्यकार आते और यहां रूककर साहित्य सृजन करते । महाप्राण निराला स्वयं साहित्यकार संसद भवन में लम्बे समय तक रहे ।[142]

---

[139] राम स्वरूप चतुर्वेदी का इलाहाबाद संग्रहालय में दिया व्याख्यान, 1993

[140] वही, पृष्ठ 87

[141] साक्षात्कार प्रद्युम्न तिवारी करूणेश (प्रधानमंत्री साहित्यकार संसद) दिनांक 1 मई 2000

[142] सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल : साहित्यकार संसद की वह सांझ, संगम अंक 22, पृष्ठ 33

साहित्यकार संसद से उस समय *महाप्राण निराला* – लेखक गंगा प्रसाद पाण्डेय जैसी कृतियों का प्रकाशन हुआ । इसके द्वारा *साहित्यकार* नामक पत्रिका का प्रकाशन किया जाता था, जिसका संपादन महादेवी वर्मा तथा इलाचंद्र जोशी संयुक्त रूप से करते थे ।[143]

साहित्यकार संसद ने साहित्य सृजन तथा राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । 1950 में दिनकर का साहित्यकार संसद ने सम्मान किया जिसमें भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने हिस्सा लिया । साहित्यकार संसद के विकास में तत्कालीन प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू ने भी योगदान दिया । उन्होंने 1000/-रू0 का स्वयं चंदा दिया तथा तत्कालीन शिक्षामंत्री अबुल कलाम आजाद को धन देने के लिए पत्र लिखा ।[144]

20वीं शताब्दी का पूर्वाद्ध, वास्तव में साहित्य का स्वर्ण युग था, उक्त संस्थाओं के अतिरिक्त अनेक साहित्यिक संस्थाओं जैसे आनन्द *मण्डल, रसिक मण्डल, साहित्य गोष्ठी, प्रगतिशील लेखक संघ* आदि का भी उदय हुआ इन सभी संस्थाओं ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार साहित्य, समाज एवं संस्कृति के योगदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से राष्ट्रीय आंदोलन को समृद्ध बनाया ।

143 साक्षात्कार प्रद्युम्न तिवारी करूणेश, दिनांक 1 मई 2000

144 पं जवाहर लाल नेहरू का मौलाना आजाद को पत्र, नई दिल्ली दिनांक 23 मई 1952

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान छत्तीसगढ़ से निकलने वाले समाचार पत्र-पत्रिकाएँ

• डा. प्रदीप शुक्ला

छत्तीसगढ़ में समाचार-पत्रों का उद्भव 1900 से माना जाता है, यद्यपि मध्यप्रदेश में पहला समाचार-पत्र 1840 में *अख़बार ग्वालियर* प्रकाशित हुआ और 1887 तक मध्यप्रदेश से निकलने वाले पत्रों की संख्या 21 थी । इसके पश्चात छत्तीसगढ़ से पत्रों का प्रकाशन प्रारंभ किया गया । 1889-1890 में भगवान दीन सिरोठिया के संरक्षण में *प्रजा हितैषी* नामक समाचार पत्र के अतिरिक्त अन्य उल्लेख नहीं मिलता । पंडित माधव राव सप्रे ने पैण्ड्रारोड (बिलासपुर) से *छत्तीसगढ़ मित्र* का प्रकाशन 1900 में किया । 32 पृष्ठों की इस मासिक पत्रिका का प्रकाशन वामन राव लाखे ने किया, जबकि रामराव चिंचोलकर ने पंडित सप्रे के साथ संयुक्त संपादन किया।

पंडित माधव राव सप्रे भारतीय राष्ट्रीयता की विचारधारा से ओत-प्रोत थे । अतः उन्होंने *छत्तीसगढ़ मित्र* का उद्देश्य साहित्यक उन्नयन के साथ ही राजनीतिक जन-जागरण और समाज में शिक्षा का प्रचार बताया । *छत्तीसगढ़ मित्र* का प्रकाशन अल्पकाल (तीन वर्षों) तक रहा, फिर भी इसने साहित्य चेतना के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । डॉ0 विनय मोहन शर्मा ने छत्तीसगढ़ मित्र के संबंध में लिखा है कि *छत्तीसगढ़ मित्र* में सम-सामयिक राजनीतिक चेतना की धारा के साथ ही इसके द्वारा तद्युगीन साहित्यक प्रवृत्तियों को विकास की एक नवीन दिशा भी प्रदान की गई ।

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में, हिन्दी की दो युगान्तकारी पत्रिकाएं, *सरस्वती* एवं *छतीसगढ़ मित्र* प्रकाशित हुई । दोनों समाचार-पत्रों में यह अन्तर था कि *सरस्वती* पत्रिका में कभी भी राजनीतिक घटनाओं पर संपादकीय नहीं लिखा गया, जबकि *छत्तीसगढ़ मित्र* ने हिन्दी में सटीक राजनीतिक टिप्पणियाँ करने का सूत्रपात भी किया और यह बताया कि संतुलित और निष्पक्ष सूक्ष्म टिप्पणियों का स्वरूप कैसा होना चाहिए ।

20 वीं शताब्दी के प्रारंभिक दो दशकों में यद्यपि छत्तीसगढ़ से निकलने वाले समाचार पत्रों की संख्या भले ही कम थीं, किंतु छत्तीसगढ़ में समग्र क्रांति लाने का कार्य बहुत थोड़े से ही समाचार पत्रों ने किया । *छत्तीसगढ़ मित्र, कान्य-कुब्ज नायक* एवं *सरस्वती* तथा *हिंदी केसरी* जैसे समाचार पत्रों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में छत्तीसगढ़ की एक पृष्ठभूमि तैयार की । अखिल भारतीय समाचार पत्रों–*प्रयाग समाचार, श्रीव्यंकटेश्वर समाचार, भारत मित्र, राजपूत, बिहार बंधु* आदि पत्रों ने *छत्तीसगढ़ मित्र* की प्रशंसा करते हुए इसकी योग्यता पर लेख लिखे ।

पंडित सप्रे की राजनीति में दखलन्दाजी इस बात से सिद्ध होती है कि उन्होंने हिंदी ग्रंथमाला में तिलक एवं गोखले के व्याख्यानों का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित किया । *हिंद-केसरी* में उनके उत्तेजक विचारों के कारण ब्रिटिश सरकार ने उन पर दण्डात्मक कार्रवाई के फलस्वरूप उन्हें क्षमा याचना पत्र प्रस्तुत करना पडा । 1910 से सप्रे जी ने पुनः समाचार-पत्र और पत्रिकाओं में ओजस्वी लेख लिखना प्रारंभ किया।

1900 के पूर्व 'प्रजाहितैषी' राजनांदगांव रियासत के राजा बलराम दास के संरक्षण में प्रकाशित किया गया, जिसके संपादक श्री भगवान दीन सिरोठिया थे । इनके अतिरिक्त *राजनांदगांव टाइम्स, सबेरा, संकेत, आत्म स्वीकृति* और *'कहि देबे संदेश'* आदि पत्रों का प्रकाशन हुआ । उक्त पत्रों के अतिरिक्त 1920 के पूर्व अन्य प्रचलित पत्रों का प्रकाशन नहीं किया जा सका । यद्यपि उक्त पत्रों का प्रकाशन शीघ्र ही बंद कर देना पडा, फिर भी इन समाचार पत्रों की उपादेयता को नकारा नहीं जा सकता । इन्होंने अपने अल्पकाल में ही जन-चेतना-जाग्रत करने का कार्य किया ।

असहयोग आन्दोलन के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों ने, न केवल छत्तीसगढ़ वरन संपूर्ण भारत में स्वाधीनता आन्दोलन के लिए रंगमंच तैयार किया । इस आन्दोलन की गूंज को भारत के समस्त क्षेत्रों में पहुंचाने के उद्देश्य से न्यायालयों, शिक्षण संस्थाओं, व्यापारिक प्रतिष्ठानों, किसानों एवं मजदूरों ने सक्रिय योगदान दिया। भारतीय समाचार-पत्र एवं लेखकों ने अपने प्रकाशन के द्वारा जन चेतना जाग्रत की, जिसका प्रभाव छत्तीसगढ़ क्षेत्र में भी पडा । कलकत्ता में हुए आंदोलन में, छत्तीसगढ़ के विभिन्न ऐसे नेताओं ने भाग लिया जो पत्रों के प्रकाशन अथवा संपादन से जुटे थे। इनमें प्रमुख रूप से ठाकुर छेदीलाल, ई0 राघवेन्द्रराव, शिव दुलारे मिश्र, पं0 रविशंकर

शुक्ल, प्यारेलाल सिंह, माधवराव सप्रे, घनश्याम सिंह गुप्त, पंडित रत्नाकर झा, वामनराव लाखे एवं पंडित सुन्दरलाल शर्मा थे ।

1920 से समाचार-पत्रों के एक नये युग का सूत्रपात हुआ । गांधी जी स्वयं पत्रकार थे और समाचार-पत्रों को वैचारिक क्रांति का एक सशक्त माध्यम मानते थे । असहयोग आंदोलन के फलस्वरूप देश के विभिन्न पत्रों ने अपने समाचारों से भारतीय जनमानस को प्रेरित किया, जिसकी प्रतिक्रियाएं छत्तीसगढ़ से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों पर भी पड़ी ।

1920 से 1940 के मध्य छत्तीसगढ़ के समाचार-पत्रों का विकास काल था । यह सच है कि प्रथम विश्व युद्ध के दौरान छत्तीसगढ़ से किसी भी महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिका का प्रकाशित न होना इस अंचल के राजनीतिक एवं समाजिक चेतना की जड़ क्रांति का परिचारक है, किन्तु यह भी सत्य है कि इसके पश्चात छत्तीसगढ़ में तीव्र गति से समाचार-पत्रों का विकास हुआ । इस समय संगठित लोकमत तैयार करने के लिए एवं प्रचार-प्रसार के लिए समाचार पत्रों की नितान्त आवश्यकता थी । संभवतः यही कारण है कि माधवराव सप्रे ने 1920 में *कर्मवीर* का प्रकाशन जबलपुर से करवाया । *कर्मवीर* ने राष्ट्रीय जागृति में पूर्ण सहयोग प्रदान किया ।

छत्तीसगढ़ में समाचार पत्रों का विकास क्रम 1920 में मुगलो (बिलासपुर) से प्रकाशित होने वाले ***भानुदय*** मासिक-पत्र से प्रारंभ हुआ । इस पत्र में छत्तीसगढ़ के ईसाई समाज का पूर्ण विवरण उदधृत रहता था । यह मुख्यतः सामाजिक पत्रिका थी । इन पत्रों की प्रतियाँ उपलब्ध न होने के कारण पत्र का पूर्ण विवरण दे पाना संभव नहीं है ।

1922 में ***'श्री कृष्ण जन्म स्थान'*** समाचार के लेखक पंडित सुन्दरलाल शर्मा थे। उन्होंने जेल के भीतर की घटनाओं एवं राजनीतिक चिन्तन का उल्लेख किया । हस्तलिखित यह पत्रिका इतिहास में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में अपना विशिष्ट स्थान रखती है । इस पत्रिका को भारत की तत्कालीन दशा का बहुमूल्य दस्तावेज कहा जा सकता है । इसमें अनेक कविताओं का वर्णन कर राष्ट्रीय भावना जागृत करने का कार्य किया गया । 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक में पंडित शर्मा की

साहित्यिक कृति, राष्ट्रीयता के विकास में महत्व रखती है । इन्होंने छत्तीसगढ़ भाषा में साहित्य का सृजन किया ।

1925 में *छत्तीसगढ़ मित्र* की अभिपूर्ति के लिए बिलासपुर डिस्ट्रिक्ट कौंसिल द्वारा कुलदीप सहायक के संपादकत्व में *'विकास'* मासिक समाचार पत्र का प्रकाशन किया गया । छत्तीसगढ़ के इतिहास को नवीन दिशा देने का कार्य *'महाकौशल पत्रिका'* ने किया । 1927 में इसका प्रकाशन नागपुर से किया गया तथा 1933 में इसे रायपुर से दैनिक रूप में प्रकाशित करना प्रारंभ किया गया । इसके आरंभिक संपादकों में सीताचरण द्विवेदी एवं सुन्दरलाल त्रिपाठी का नाम उल्लेखनीय है । महाकौशल का उददेश्य राष्ट्रीय विचार-धारा का प्रचार करना था, इसके उद्देश्य पूर्ति के लिए प्रेरणा का कार्य पंडित रविशंकर शुक्ल कर रहे थे । 1933 में राजनीतिक दृष्टिकोण से कांग्रेस कमेटी ने *कांग्रेस पत्रिका* नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन गौरीशंकर एवं स्वराज्य प्रसाद द्विवेदी के संपादकत्व में किया गया । *कांग्रेस पत्रिका* विशुद्ध राजनीतिक *समाचार-पत्रों* में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती थी ।

केशव प्रसाद वर्मा और स्वराज्य प्रसाद द्विवेदी के संपादकत्व में हिन्दी साहित्य मण्डल रायपुर से 1935 में एक मासिक पत्रिका *आलोक* का प्रकाशन किया गया । इसी वर्ष केशव प्रसाद वर्मा ने एक अन्य मासिक समाचार पत्र *शिक्षा* का प्रकाशन बटेरिया बुक डिपो, रायपुर से किया । इन समाचार पत्रों का महत्व छत्तीसगढ़ की साहित्यक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी के कारण था । वास्तव में यह समाचार-पत्र, पत्रिकाएं साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु बन गई थीं ।

1935 का वर्ष छत्तीसगढ़ में समाचार.पत्रों के इतिहास में पुनः स्वार्णिम था । इस वर्ष डिस्ट्रिक्ट कौंसिल रायपुर द्वारा पण्डित सुन्दरलाल त्रिपाठी के सम्पादकत्व में मासिक पत्रिका *उत्थान* का प्रकाशन किया गया । इस पत्रिका में शिक्षा और साहित्य पर विशेष सामग्री प्रकाशित की जाती थी । इस पत्रिका ने *छत्तीसगढ़ मित्र* एवं *विकास* पत्रिकाओं की कमी की क्षतिपूर्ति की । यह पत्रिका, यद्यपि दो वर्षों तक ही जीवित रही, किन्तु इसने इस क्षेत्र के सभी पहलुओं पर अपने विचार रखने का प्रयास किया और अंत में 1937 में डिस्ट्रिक्ट कौंसिल के भंग होते ही इसका अंत हो गया ।

छत्तीसगढ़ में कवियों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर मार्क्सवादी सिद्धांतों को छत्तीसगढ़ में स्थापित किया । यहाँ मार्क्स की विचारधारा का सर्वाधिक प्रचार 1926 के बाद हुआ । मार्क्स ने जर्मनी के दर्शन, इग्लैंड के अर्थशास्त्र और फ्रांस के समाजवाद के आधार पर अपना मत निर्धारित किया था । प्रगति में द्वन्द्वात्मक संघर्ष चलता है, जिसके परिणाम स्वरूप क्रान्ति होती है और समाज में परिवर्तन आता है । इस समय *संज्ञा* में प्रकाशित कुन्ज बिहारी चौबे के गीत *'क्रान्तिमान'* में मार्क्सवादी विचार धारा की स्पष्ट छाप दिखाई देती है ।

1937 में *कॉंग्रेस पत्रिका* के साथ बिलासपुर से *सचेत* एवं सरगुजा से *'सरगुजा संदेश'* का प्रकाशन किया गया । इन समाचार-पत्रों में साहित्य, समाज, राजनीति, शिक्षा एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रकाशन किया जाता था । 1941 तक छत्तीसगढ़ से निकलने वाले विभिन्न समाचार-पत्र मासिक थे, किन्तु इसके पश्चात साप्ताहिक समाचार-पत्रों का प्रकाशन हुआ । उन्हीं दिनों 1939 में सरकारी प्रेस के माध्यम से ब्रिटिश सरकार ने सरकारी समाचारों के लिए एक साप्ताहिक अख़बार *बस्तर समाचार* का जगदलपुर से प्रकाशन किया । छत्तीसगढ़ में यह एक मात्र सरकारी समाचार-पत्र था । इसी वर्ष *रायगढ़ समाचार* का प्रकाशन ए0एम0 बाजपेयी, मनोहर मिश्र एवं वनमाली शुक्ला के सम्पादकत्व में प्रारम्भ किया गया ।

1941 में बिलासपुर से एक साप्ताहिक पत्र *पराक्रम* का प्रकाशन एवं सम्पादन रामकृष्ण पाण्डेय ने किया । 1942 राष्ट्रीय आन्दोलन का निर्णायक वर्ष था, इस समय भारतीय समाचार-पत्रों का तीखा स्वर देखने को मिलता है । इसी कड़ी में छत्तीसगढ़ के रायपुर से केशव प्रसाद वर्मा के सम्पादकत्व में *अग्रदूत* का प्रकाशन किया गया । इस समाचार-पत्र में ब्रिटिश सरकार की घोर आलोचना की गई, जिससे ब्रिटिश सरकार ने इस पर कड़ी नजर रखी । तात्कालीन समाचार-पत्रों में *अग्रदूत* ने अपनी अलग पहचान बनाई । इस पत्र के सहायक सम्पादक के रूप में स्वराज प्रसाद त्रिवेदी ने कार्य किया ।

1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन ने सम्पूर्ण भारत को उद्वेलित कर रखा था । गाँधी जी के इस आन्दोलन को *अग्रदूत* ने अपने में समाहित कर लोगों में इसकी गूँज प्रसारित की । सितम्बर, 1942 में केशव प्रसाद वर्मा एवं स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी के घरों की तलाशी ली गई और अख़बार पर सैंसर लागू किया गया । श्री केशव प्रसाद

वर्मा को कारावास का दण्ड भुगतना पडा, साथ ही अल्पकाल के लिए इस पत्रिका का प्रकाशन स्थगित करना पडा ।

उक्त पत्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में छत्तीसगढ़ के समाचार-पत्रों का विशेष योगदान रहा । भारतीय राजनीति में, विभिन्न समयों में हो रहे परिवर्तन का प्रभाव देश के अन्य क्षेत्रों के साथ छत्तीसगढ़ पर भी पडा । यह सच है कि इन दिनों मध्य प्रान्त तथा छत्तीसगढ़ से निकलने वाली अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं में देश की राजनीतिक स्थिति का उल्लेख किया जाता था, जिसका प्रभाव पाठकों पर पड़ता था । अनेक समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने अपने लेखों में राष्ट्रीयता को समर्पित कविताओं का वर्णन किया ।

1942 के आन्दोलन का प्रभाव छत्तीसगढ़ में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । इस समय ब्रिटिश शासन द्वारा कांग्रेस को अवैधानिक घोषित किया गया तथा कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं को बन्दी बना लिया गया । छत्तीसगढ़ के प्रमुख नेता पंडित रविशंकर शुक्ल, ठाकुर छेदीलाल और पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र को बन्दी बना लिया गया, किन्तु उनकी अनुपस्थिति में भी छत्तीसगढ़ में भारत छोड़ो आन्दोलन का संचालन, स्थानीय नेताओं ने किया । 1942 के आन्दोलन का संचालन स्थल रायपुर का *आनन्द समाज* पुस्तकालय था । यहाँ से कार्यक्रम निर्धारित किए जाते थे । यहाँ गोल-बाजार स्थित बाँके बिहारी मंदिर में, गयाचरण त्रिवेदी द्वारा एक सूचना पटल, (ब्लैक बोर्ड) पर ''आज की खबर'' शीर्षक से तत्कालीन घटनाओं का वर्णन लिखा जाता था ।

1942 के आन्दोलन में तत्कालीन समाचार-पत्र पत्रिकाओं का अविस्मरणीय योगदान था । ब्रिटिश सरकार समाचार-पत्रों से भयभीत थी, केन्द्रीय सरकार के गृह विभाग ने मुख्य सचिवों को तार (टेलीग्राम) द्वारा निर्देशित किया था कि कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी कार्यक्रमों की हमें कोई जानकारी नहीं मिली है । अतः हर सम्भव प्रयास कर उनके प्रकाशनों एवं प्रसार को रोका जाए, साथ ही कांग्रेस के पदाधिकारियों के घरों पर छापा मारकर इस प्रकार की योजना सम्बन्धी कागजों को जब्त किया जाए ।

1935 में नागपुर से प्रकाशित *महाकौशल* समाचार-पत्र का सम्पादन पंडित रविशंकर शुक्ल के नेतृत्व में हुआ था, जो पुनः 6 मार्च, 1946 से स्वराज्य प्रसाद द्विवेदी के सम्पदाकत्व में प्रारम्भ हुआ । महाकौशल का उद्देश्य कांग्रेस की राष्ट्रीय विचारधारा का प्रसार करना था । छत्तीसगढ़ के साहित्य का भी इसमें पर्याप्त संवर्धन होता रहा । इसी वर्ष खैरागढ़ तथा रायपुर से रामकृष्ण अग्रवाल ने हिन्दी मासिक *श्री* का प्रकाशन किया *सरगुजा सन्देश* एवं *बस्तर समाचार* जैसे साप्ताहिक समाचार-पत्रों ने समय की माँग को देखते हुए अनेक लेख प्रकाशित किए । 1947 में रायपुर से *छत्तीसगढ़ केसरी,* साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन किया गया जो कालान्तर में (1952), में *हिन्द केसरी* के नाम से प्रकाशित हुई । इसी वर्ष दुर्ग से *प्रजाबन्धु* एवं *'जिन्दगी'* नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन केदारनाथ झा के सम्पादकत्व में हुआ ।

उक्त समाचार-पत्र पत्रिकाओं ने 1942 के आन्दोलन में अविस्मरणीय योगदान दिया । *सावधान, अग्रदूत, कांग्रेस पत्रिका* व *महाकौशल'* ने अंचल में जनचेतना जागृत करने का कार्य सक्रियता से किया परिणामस्वरूप छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय आंदोलन की एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार हुई, जिसने भारतीय आन्दोलन को गति प्रदान करने में सहायता प्रदान की । 1942 में *आजाद हिन्द फौज* के जिन अधिकारियों पर सैनिक कानून के अनुसार राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया था, उन लोगों के लिए धन इकठ्ठा करने की दृष्टि से बिलासपुर में विद्यार्थी कांग्रेस ने विशाल जुलूस निकाला; परिणामस्वरूप स्थानीय जनता भी इनसे प्रभावित हो कर उनकी रिहाई की माँग की ।

भारत छोड़ो आन्दोलन की उग्रता तथा समाचार-पत्रों ने ब्रिटिश शासन को यह स्पष्ट कर दिया था कि वे अब अधिक दिनों तक भारत को प्रत्यक्षतः अपने नियंत्रण में नहीं रख सकते । इन पत्रों की विशेषता यह थी कि इनमें राष्ट्रीयता का अलख विदेशी समाचारों अथवा विदेशों में घटित घटनाओं का वर्णन कर के किया जाता था । इसका एक उदाहरण उत्थान पत्रिका में पंडित रविशंकर शुक्ल के एक लेख *आयरलैण्ड का इतिहास* के क्रमिक प्रकाशन से लिया जा सकता है, जिसमें स्पष्ट किया गया था कि किस तरह आयरलैण्ड के इतिहास में राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में विद्यार्थी और शिक्षक शहीद हुए ।

पंडित रविशंकर शुक्ल ने एक टिप्पणी *कांग्रेस पत्रिका* में प्रकाशित की जिसमें कहा गया था कि भारत में अंग्रेजी शासन के इतिहास का अधिक भयावह समय आ गया है । हमारे पास अहिंसा के अतिरिक्त और कोई दूसरा हथियार नहीं है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम लोग सत्य और अहिंसा के पथ पर तथा न्याय के बल पर हानि उठाते हुए भी अवश्य विजयी होंगे । रायपुर जिले का प्रत्येक व्यक्ति कांग्रेसी है और प्रत्येक व्यक्ति की धन सम्पदा कांग्रेस की धन सम्पत्ति है ।

महाकौशल के अतिरिक्त छत्तीसगढ़ में 1947 के पूर्व दैनिक पत्रों का पूर्णतः अभाव था । यद्यपि यह सच है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान छत्तीसगढ़ से बहुत कम राजनीतिक समाचार पत्रिकाएं निकलती थी, किन्तु यह भी सच है कि साहित्यिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं शिक्षा से सम्बन्धित समाचार पत्रिकाओं का प्रकाशन राष्ट्रीयता की मुख्य धारा को ध्यान में रखकर किया जाता था । ऐसे पत्रों में लिखे लेखों एवं कविताओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि वे ब्रिटिश शासन पर प्रत्यक्ष प्रहार न करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से उनके विरूद्ध जनमत तैयार किया करते थे ।

1900 से 1947 के मध्य छत्तीसगढ़ में समाचार पत्रिकाओं का उद्भव एवं विकास दोनों हुआ, हालाँकि इसके पूर्व भी यहां से कुछ समाचार-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई, जिनकी प्रतियाँ अप्राप्त तो हैं, किन्तु अनेक ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है । इस काल को समाचार-पत्रों के विकास का काल की संज्ञा देना पूर्णतः सार्थक है । इस काल में सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक समाचार-पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है । इन समाचार-पत्रों के समग्र अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उक्त समाचार-पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्रीय विचार धारा को समर्पित थीं ।

संदर्भ ग्रंथ

1	शर्मा, रामदास	*छत्तीसगढ़ में साहित्यक चेतना और उसके विविध आयाम- (शोध प्रबन्ध)*
2	शुक्ल, संतोष कुमार	*माधव राव सप्रे-व्यक्तित्व एवं कृतित्व,* 1996 ।
3	हार्डिकर, पंडित गोविन्दराव	*पंडित माधवराव सप्रे-* जीवनी ।
4	समाचार पत्र	छत्तीसगढ़ मित्र जनवरी, 1902 ।
5	गुप्ता, मदनलाल	*छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन* ।
6	मिश्र, डी0पी0	*मध्य प्रदेश में स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास* ।
7	शर्मा, जे0पी0	*छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय आन्दोलन,* 1920 से 1947, शोध प्रबन्ध ।
8	श्रीधर, विजयदत्त	मध्य प्रदेश में पत्रकारिता उद्भव और विकास ।
9	डिस्ट्रिक्ट गजेटियर	1973 *रायपुर*
10	होम डिपार्टमेंट पॉलिटिकल फाइल न0 3/13/42, 665, 1942	
11	मिश्र, देवेश दत्त	*स्वतंत्रता संग्राम, महाकौशल के समाचार पत्रों का योगदान* ।
12	*रिपोर्ट ऑन न्यूज पेपर्स एण्ड पिरियाडिकल्स फाइल न0 53/1/38, 1937*	
13	माहेश्वरी, रामगोपाल	*शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ,* 1955 (जीवनी खण्ड) ।
14	*कांग्रेस-पत्रिका*	रायपुर, 29 फरवरी, 1940 ।

लेखकों का परिचय

1. डा. पुनिता हर्णे
   अध्यापक, पत्रकारिता विभाग
   महादेव देसाई समाज सेवा महाविद्यालय
   गुजरात विद्यापीठ,
   अहमदाबाद

2. डा. मीना गौड़
   सह आचार्य
   इतिहास विभाग
   मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय
   उदयपुर

3. श्री सतधारी लाल साहु
   सहायक अभिलेख अधिकारी
   अभिलेख केन्द्र
   राष्ट्रीय अभिलेखागार
   झालाना डूगरी, जयपुर

4. डा. अरूण कुमार श्रीवास्तव
   अभिलेखाधिकारी
   राष्ट्रीय अभिलेखागार,
   जनपथ, नई दिल्ली

5. डा. चंद्रभूषण गुप्त 'अंकुर'
   इतिहास विभाग
   दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय
   गोरखपुर

6. श्री एम. बी. शाह
   कार्यकारी सदस्य
   आई. वी. के. राजवाड़े सशोधन मंडल
   धूले

7. डा. राजीव दूबे
विभागाध्यक्ष (इतिहास विभाग)
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय
जबलपुर (म. प्र.)

8. प्रो. आभा आर. पाल
इतिहास विभाग
पं० रवि शंकर शुक्ला विश्वविद्यालय
रायपुर

9. डा. देवेन्द्र कुमार शर्मा
सहायक अभिलेख अधिकारी
क्षेत्रीय कार्यालय
राष्ट्रीय अभिलेखागार
सिविल लाईन्स,
भोपाल

10. डा. प्रदीप शुक्ला
इतिहास विभाग
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
विलासपुर